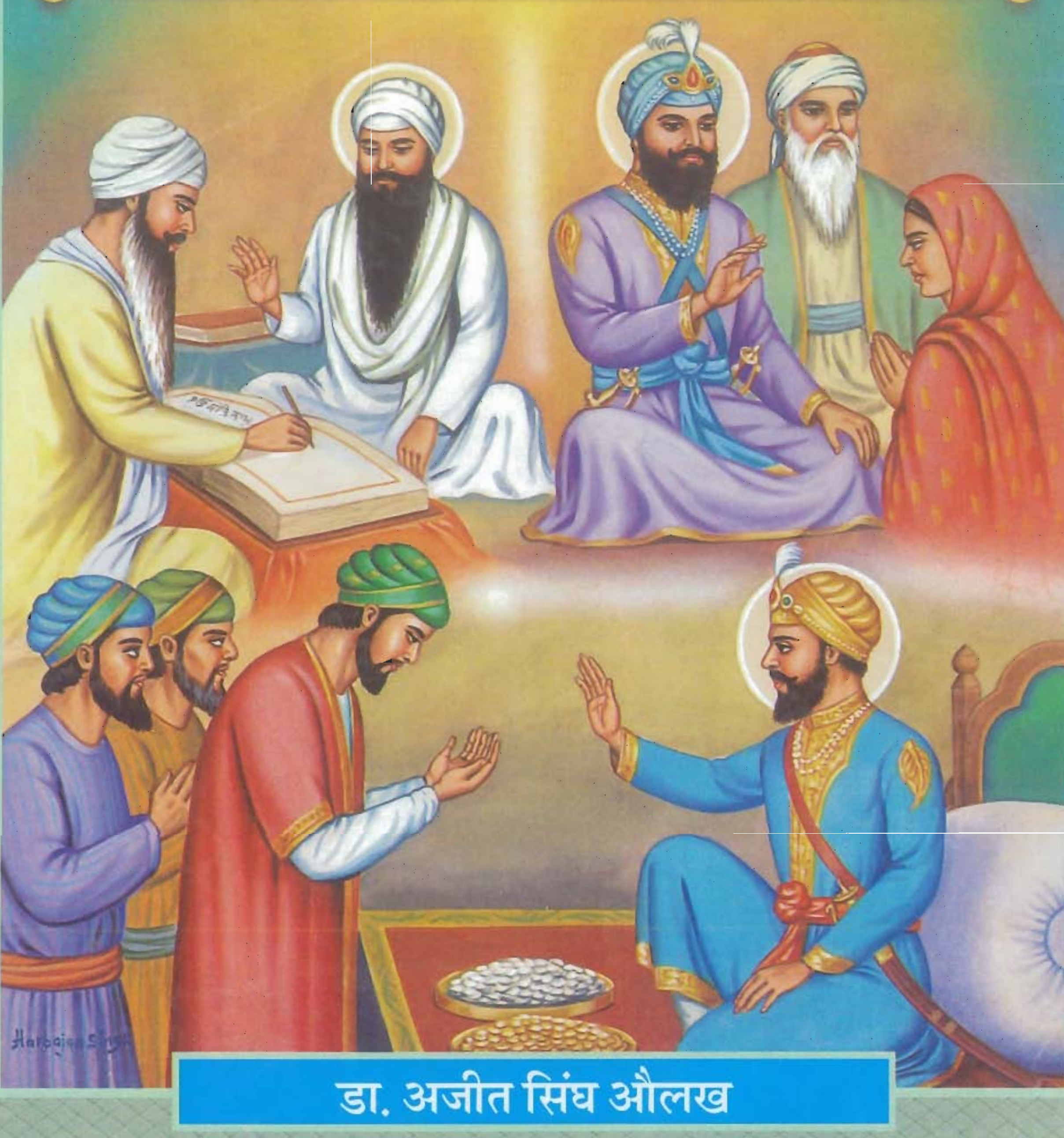
सचित्र जीवन साखियां

गुरु अर्जुन देव जी
गुरु हरिगोबिंद साहिब जी
गुरु हरिराय साहिब जी



डा. अजीत सिंघ औलख

੧ਓ ਸਤਿਗੁਰ ਪ੍ਰਸਾਦਿ॥

सचित्र जन्म साखियां

गुरु अर्जुन देव जी
गुरु हरिगोबिंद साहिब जी
गुरु हरिराय साहिब जी

डा. अजीत सिंघ औलख
एम. ए. पी-एच.डी.

प्रकाशक:
भा. चतर सिंघ जीवन सिंघ
बाज़ार माई सेवां, अमृतसर।

ISBN 81-7601-481-8

पहला संस्करण 2002
दूसरा संस्करण 2015
भेटा : 150-00

प्रकाशकः
भा. चतर सिंघ जीवन सिंघ
बाज़ार माई सेवां, अमृतसर।
टैली/फैक्सः 0183-2542346, 2547974, 2557973
E-mail : csjs@vsnl.com
Visit our Website : www.csjs.com

मुद्रकः– जीवन प्रिंटर्ज, अमृतसर। फोनः 2705003, 5095774



गुरु अर्जुन देव जी

जन्म व विद्या

गुरु अर्जुन देव जी का जन्म 15 अप्रैल 1563 ई. को गोइंदवाल साहिब में हुआ। उनकी माता बीबी भानी और पिता श्री गुरु रामदास जी थे। क्योंकि बीबी भानी गुरु अमरदास जी की सुपुत्री थीं, इसीलिए वे उनके नाना जी लगते थे। उस समय गुरु रामदास अभी गुरु नहीं बने थे बल्कि अभी गुरु जी की सेवा ही करते थे। जब गुरु अमरदास जी को यह पता चला कि उनकी पुत्री के घर तीसरे पुत्र ने जन्म लिया है तो वे अपने दोहते को देखने के लिए गए। पहली नज़र में देखते ही उन्होंने कह दिया, "यह महान व्यक्ति बनेगा।" गुरु अमरदास जी अपने इस दोहते को बहुत प्यार करते थे। इसलिए (गुरु) अर्जुन देव जी भी उनके पास जाने को हर पल उतावले रहते थे। वे प्रायः गुरु-घर में ही आकर खेलते थे। एक बार जब वे खेल रहे थे तो उनकी गेंद उछलती हुई गुरु अमरदास जी के पलंग के नीचे चली गई। जब (गुरु) अर्जुन देव जी गेंद लेने के लिए पलंग के नीचे गए तो पलंग ही ऊंचा उठ गया और गुरु जी की नींद खुल गई। चारपाई को हिलता देख कर उन्होंने सहज ही कहा:-

"इह किहड़ा वड्डा पुरख है भारी,
जिस मंजी हिलाई साडी सारी॥"

जब गुरु जी ये वचन कर रहे थे तो उनकी सुपुत्री बीबी भानी भी वहां पहुंच गई। वह कहने लगी, "यह आपका दोहता है दोहता।" जब गुरु जी ने यह शब्द सुने तो वे फिर बोले, "दोहता बाणी का बोहिथा।" फिर उन्होंने (गुरु) अर्जुन देव जी को अपने पास बुला कर अपने सीने से लगा लिया और कहने लगे, "आज से तुम हमारे पास पढ़ने के लिए आया करो हम तुम्हें पंजाबी व गुरुबाणी पढ़ाया करेंगे, राग-विद्या सिखाएँगे।"

उन्होंने बीबी भानी को भी हिदायत की कि वह बच्चे को लेकर प्रतिदिन उनके पास आया करे। गुरु जी की आयु उस समय चार वर्ष की थी। वे बड़ी प्रसन्नता व उत्सुकता से पढ़ते थे और शीघ्र ही राग विद्या में निपुण हो गए। जब गुरु अमरदास जी यह जान गए कि गुरु जी विद्या में निपुण हो गए हैं व प्रत्येक राग को बड़ी सुन्दर आवाज़ में गा सकते हैं, तब उन्होंने बाबा मोहरी जी को उन्हें गणित पढ़ाने के लिए नियुक्त कर दिया। बाबा मोहरी जी गणित विद्या में बड़े निपुण थे, इसलिए (गुरु) अर्जुन देव को उन्होंने गणित विद्या में पारंगत कर दिया। हिन्दी, संस्कृत पढ़ाने के लिए पंडित बेणी को नियुक्त किया। उस समय मुस्लिम शासन होने के कारण फारसी औपचारिक भाषा थी। इसलिए एक फारसी के मौलवी को उन्होंने फारसी पढ़ाने के लिए नियुक्त किया। (गुरु) अर्जुन देव जी ने अपनी दस वर्ष की आयु में हर

तरह की पढ़ाई सम्पन्न की।

लेकिन उनका गुरुबाणी से बहुत प्यार था, वे गुरुबाणी को कण्ठ करते और ाम को अपने पिता (गुरु) रामदास जी को सुनाते। (गुरु) रामदास जी उनकी राग विद्या में इतनी निपुणता देख कर बहुत प्रसन्न होते।

(गुरु) अर्जुन देव को घुड़सवारी व नेज़ाबाजी का भी अत्यधिक चाव था। वे जब सुबह अपने पिता जी और भाईयों के साथ घूमने जाते त्रो घुड़सवारी का प्रत्येक दांव-पेच अच्छी तरह सीखते। कई बार भाईयों में नेज़ेबाजी का मुकाबला भी होता। यद्यपि बाबा महांदेव इसमें कोई रुचि नहीं लेते थे, लेकिन जब उनका बड़ा भाई पृथी चंद उनसे हार जाता तो वे बहुत दुःखी होते। क्योंकि उसने देखा कि दस वर्ष की आयु में वह एक अच्छा विद्वान, एक बढ़िया घुड़सवार व निपुण तीरंदाज बन गया था।

(गुरु) अर्जुन देव जी बाबा मोहन दास का भी बड़ा आदर करते थे, वह उनको पूर्ण संत समझते थे। अपने माता-पिता के साथ भी उनका बहुत प्यार था। वे सदैव उनके साथ रहते और उनकी प्रत्येक आज्ञा का पालन करते थे। माता भानी ने उनको आदेश मानना सिखाया व गुरु रामदास जी ने सच्ची सेवा दृढ़ करवाई।



विवाह

(गुरु) अर्जुन देव जी के बड़े भाई पृथी चंद का विवाह गांव हेहर ज़िला लाहौर में बीबी कर्मो के साथ हुआ था। बाबा महांदेव ने शादी करने से इन्कार कर दिया था। जब (गुरु) अर्जुन देव जी ग्यारह वर्ष के हुए तो गुरु अमरदास जी ने यह मन बनाया कि वे अपने छोटे दोहते की शादी भी अपने जीवित रहते कर दें।

गांव मउ (दोआबा) में उनका एक श्रद्धालु कृष्ण चंद रहता था। वह गुरु जी की सेवा के लिए प्रायः आया करता था। एक बार जब वह परिवार सहित आया तो उनके साथ उनकी एक छोटी बेटी गंगा देवी भी थी। उस बालिका के प्यार, व्यवहार व सुशील स्वभाव को देख कर गुरु जी अत्यधिक प्रसन्न हुए।

गुरु जी ने उसी दिन भाई कृष्ण चंद को बुलाया और उनकी बेटी का रिश्ता अपने दोहते गुरु अर्जुन देव जी के लिए मांग लिया। भाई कृष्ण चंद को और क्या चाहिए था, गुरु-घर से रिश्ता जोड़ कर उसकी कई पीढ़ियां पार लग जानी थीं। वह बड़ा प्रसन्न होकर बोला, "महाराज! यह तो हमारे अहोभाग्य हैं यदि मेरी लाडली को गुरु-घर की सेवा करने का अवसर मिले तो इससे बड़ी बात और क्या हो सकती है। मुझे यह सम्बन्ध स्वीकार है, (गुरु) अर्जुन देव जी को मैंने देखा हुआ है, वह तो एक अल्लाही रूप हैं।"

कुछ दिनों बाद ही यह रिश्ता पक्का हो गया और विवाह की तिथि भी निश्चित हो गई।

गुरु-घर में विवाह की तैयारियां आरम्भ हो गईं। गुरु अमरदास और (गुरु) रामदास भी विवाह की तैयारी में व्यस्त हो गए। क्योंकि रास्ते में दरिया आता था, इसलिए सारी बारात घोड़ियों पर चढ़ कर जाने के लिए तैयार हो गई। गुरु अमरदास जी ने अपने दोहते को अपने पास बुला कर स्वयं दसतार व सेहरा सजा कर कलगी लगाई।

दरिया ब्यास पार करके बारात मउ पहुंची। समस्त गांव के आदमी और स्त्रियां स्वागत के लिए गांव के बाहर ही आ पहुंचे। सबसे पहले गांव का मुखिया गुरु अमरदास जी को आकर मिला और गुरु जी के चरण स्पर्श करके कहने लगा, "सतिगुरु! हमारा एक अनुनय है कि इस गांव की प्रथा है कि वर को पहले घोड़ा भगा कर एक किल्ली नेज़े के साथ उखाड़नी पड़ती है। हम आपके साथ यह शर्त रखनी तो नहीं चाहते, लेकिन पुरातन काल से यह रीति चली आ रही है। गुरु जी यह बात सुन कर खिलखिला कर हंसे और कहने लगे, "हे महापुरुषो! आप ने हमें साधु ही समझ रखा है। हम यह किल्ली उखाड़ कर ही गांव में प्रवेश करेंगे। कहां है वह किल्ली?"

मुखिया ने जंड के वृक्ष से बनी एक किल्ली खेत में गड़ी हुई दिखाई। सारी बारात

शस्त्रबद्ध थी उनके पास नेज़े व तलवारें भी थीं। गुरु अर्जुन देव को एक नेज़ा दिया गया। उन्होंने नेज़ा पकड़ कर घोड़े को बहुत तेज भगाया व पहले वार से ही किल्ली उखाड़ कर गांव के सभी लोगों को चकित कर दिया। वे समझते थे कि ग्यारह वर्ष का बालक इतनी जल्दी किल्ली उखाड़ नहीं सकेगा। इधर बाराती भी (गुरु) अर्जुन देव की इस निशानेबाज़ी पर बहुत प्रसन्न हुए और 'वाह वाह' कर उठे। गुरु अमरदास और (गुरु) रामदास ने अपने बहादुर बालक को आशीर्वाद दिया। बारात फिर घोड़ियों से उतर आई और गांव वाले प्रत्येक घोड़ी को पकड़ कर चारा डालने के लिए ले गए। जब बारात इकट्ठी हो गई तो भाई कृष्ण चंद हार लेकर अपने समधी से मिलनी करने के लिए आया। (गुरु) रामदास और भाई कृष्ण चंद गले मिले। फिर वे सभी को अपने घर ले गए। घर जाकर कुछ खाने-पीने के बाद बीबी गंगा देवी और (गुरु) अर्जुन देव का गुर-मर्यादा के अनुसार विवाह हो गया। अगले दिन बारात डोली सहित गोइंदवाल पहुंच गई। दोनों की जोड़ी अनुपम थी। सारे शहर में खुशियां मनाई गईं।



मियां मीर से मिलाप

गुरु रामदास जी को जब यह अनुभव हुआ कि उनका प्रभु ज्योति में विलीन होने का समय नज़दीक आ रहा है तो उन्होंने भी पूर्व गुरुओं की तरह अपने उत्तराधिकारी की परीक्षा लेने का विचार बनाया। उन दिनों ही लाहौर में गुरु रामदास जी के एक सम्बन्धी भाई सिहारी मल के लड़के की शादी थी। इस शादी में सम्मिलित होने के लिए गुरु साहिब को निमन्त्रण आया था। लेकिन गुरु साहिब उस विवाह में सम्मिलित होना नहीं चाहते थे। वह समझते थे कि लाहौर में उनके सिख सेवक इतने अधिक हो गए हैं कि विवाह में उनको सम्भालना कठिन हो जाएगा। उन्होंने सोचा कि इस विवाह में उपस्थित होने के लिए किसी बेटे की जिम्मेदारी लगाएंगे। इससे यह स्पष्ट हो जाएगा कि उनका कौन-सा बेटा आज्ञाकारी है। जो बेटा जाने के लिए मान जाएगा उसको वह कहेंगे कि उनकी आज्ञा के बिना अमृतसर न आए। इस तरह उन्होंने एक सरल-सी परीक्षा रख दी।

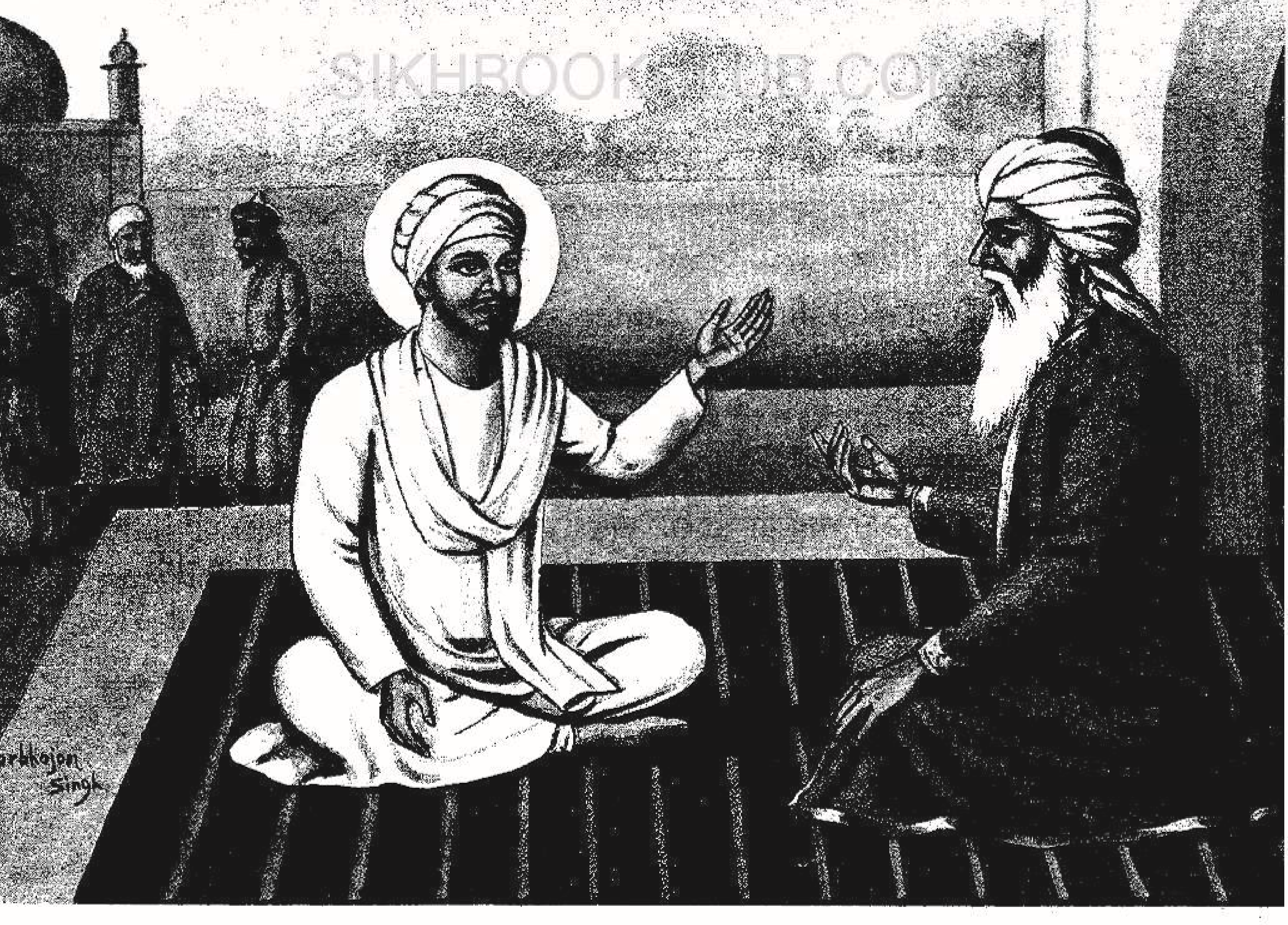
पहले उन्होंने बाबा पृथी चंद को बुलाया और विवाह में सम्मिलित होने का आदेश दिया। लेकिन उसने दो टूक उत्तर दिया कि वह इतने बड़े व्यापार को छोड़ कर नहीं जा सकता। फिर उन्होंने अपने दूसरे पुत्र महांदेव को बुलाया तो उसने भी अपनी स्वीकृति न दी। वह कहने लगा कि वह तो ब्रह्मचारी है और दुनिया के रिश्ते-नातों को त्याग चुका है। वह किसी को अपना रिश्तेदार नहीं समझता। फिर उन्होंने (गुरु) अर्जुन देव को बुला कर यह आदेश दिया। उन्होंने तुरंत अपनी स्वीकृति दे दी। जब वह जाने लगा तो गुरु जी ने यह कह दिया कि जब तक हम नहीं बुलाते, वापिस नहीं आना।

(गुरु) अर्जुन देव लाहौर चले गए, विवाह में सम्मिलित हुए। विवाह की समाप्ति के बाद वह चूना मंडी अपने पिता के पुश्तैनी घर में आ गए। गुरु रामदास जी जब लाहौर गए थे तो वे इसको धर्मशाला बना आए थे। यहां प्रतिदिन गुरु अर्जुन देव जी स्वयं कीर्तन व कथा करते। उनकी आवाज़ बड़ी सुरीली थी तथा वे सभी साज बजा लेते थे। गुरु-घर के प्रेमियों को तो आनन्द आ गया। दिन-प्रतिदिन संगत की गिनती बढ़ती गई।

लाहौर पीरों-फकीरों का शहर था। दिन के समय अपने कुछ साथियों को लेकर प्रसिद्ध पीरों-फकीरों को मिलने चल पड़ते। उस समय साईं मियां मीर बहुत पूजनीय संत माने जाते थे। बड़े-बड़े हाकिमों से लेकर बादशाह तक उनको प्रणाम करने आते थे। गुरु जी साईं मियां मीर को मिलने के लिए उनके डेरे पहुंच गए। साईं जी का भी गुरु नानक के शिष्यों से बहुत प्यार था। जब उनको पता चला (गुरु) अर्जुन देव, अमृतसर शहर बसाने वाले गुरु रामदास के पुत्र हैं, तो उन्होंने बड़े प्यार से अपने पास बिठाया। (गुरु) अर्जुन देव जी के विचार जान

कर वे इतने प्रभावित हुए कि हमेशा के लिए उनके ही हो गए।

(गुरु) अर्जुन देव जी अब प्रायः उनके पास आने लगे। तदुपरांत वह शाह बिलावल, शाह हुसैन, छज्जू भक्त, कान्हा भक्त और पीलू भक्त को भी मिले। इस तरह लाहौर रहते (गुरु) अर्जुन देव जी का दो वर्ष से भी अधिक समय व्यतीत हो गया, लेकिन उनको गुरु जी ने वापिस न बुलाया। अंत में उन्होंने एक पत्र लिखा और अपने एक सिख के हाथ अमृतसर भेजा। लेकिन पृथी चंद ने उसको गुरु जी तक पहुंचने ही न दिया। फिर कुछ समय पश्चात् उन्होंने दूसरा पत्र लिखा। उसको भी पृथी चंद ने संभाल लिया। इसके बाद तीसरा पत्र लिख कर उन्होंने अपने सिख से कहा कि यह चिट्ठी वह स्वयं अपने हाथों से गुरु रामदास जी को देकर आए। जब गुरु जी ने वह पत्र पढ़ा और उस पर तीन का अक्षर अंकित देखा तो उन्होंने सिख से पूछा कि बाकी के दो पत्र कहां गए। सिख ने बताया कि पहले पत्र पृथी चंद को दिए थे। जब गुरु जी ने पृथी चंद से पूछा तो उसने इसके बारे में अनभिज्ञता प्रकट की। अंततः गुरु जी ने एक सिख को भेज कर उसके घर की तलाशी ली तो पत्र प्राप्त हो गए। (गुरु) अर्जुन देव परीक्षा में सफल हो गए व गुरु जी ने उनको गुरुगद्दी पर बिठा दिया।



सत्ता और बलवंड

गुरु रामदास ने गुरुगद्दी गुरु अर्जुन देव को सौंप कर यह निश्चय करवाया कि गुरु अर्जुन देव उनका ही रूप हैं। केवल इनको ही गुरु मानना है तथा किसी ओर के पीछे नहीं लगना है। अगले दिन गुरु रामदास जी गोइंदवाल चले गए। उनके साथ गुरु अर्जुन देव व अन्य सिख भी थे। एक रात वहां ठहरे व अगले दिन प्रभु-ज्योति में विलीन हो गए। अन्तिम रीतियां पूर्ण करके गुरु अर्जुन देव जी अमृतसर आ गए।

यहां पुनः गुरु रामदास वाली मर्यादा चल पड़ी। प्रतिदिन प्रातः बाणी का कीर्तन होता और गुरु अर्जुन देव जी कथा करते तथा संगत को उपदेश देते।

उस समय सत्ता और उसका बेटा बलवंड दरबार में कीर्तन किया करते थे। उनका मधुर कीर्तन सुन कर गुरु जी व संगत बहुत प्रसन्न होती। एक दिन सत्ते ने गुरु जी से कहा, "हे महाराज! मेरी बेटी की शादी है, हमारी कुछ सहायता करो।" गुरु जी ने कहा, "चिन्ता न करो आज के दिन जो भी चढ़ावा चढ़ेगा, वह सभी आपको दे दिया जाएगा।" शाम के कीर्तन की समाप्ति पर जितना भी चढ़ावा आया, सारे का सारा उनकी झोली में डाल दिया। लेकिन जब उन्होंने माया की गिनती की तो बहुत कम रुपये निकले। उस दिन चढ़ावा ही बहुत कम चढ़ा था। वह कम रुपये देख कर बड़ा दुःखी हुए।

जब पृथी चंद को पता चला तो उसने ऐसे अवसर का लाभ लेना चाहा। वह उसी समय सत्ते और बलवंड को मिला और कहने लगा कि आज तो गुरु ने संगत को चढ़ावा चढ़ाने से ही रोक दिया था, क्योंकि यह चढ़ावा आपको दिया जाना था। यह चढ़ावा तो केवल आपके कीर्तन के कारण ही आता है। अगर आप कीर्तन करना छोड़ दें तो गुरु के पास खाने के लिए एक समय का भोजन भी नहीं रहेगा।

सत्ता व बलवंड पृथी चंद की बातों में आ गए। वह गुरु जी के पास गए और गुरु-घर के विरुद्ध अपशब्द कहने लगे। वे यहां तक कह गए कि हमारे कीर्तन करने के कारण ही यहां संगत आती है, अगर हम न आएं तो आपको कोई गुरु न कहे। गुरु जी ने उनको बड़ी नम्रता से समझाया, लेकिन वे और ज़ोर से बोलने लग पड़े। जब वे चुप न हुए तो गुरु जी ने संगत से कहा, "इन्होंने गुरु नानक के घर की निन्दा की है, इसलिए इनसे कोई बात न करे।"

गुरु जी स्वयं साज बजाना और कीर्तन करना जानते थे। इसलिए उन्होंने स्वयं साज उठाए और कीर्तन करने लगे। जब संगत ने उनका कीर्तन सुना तो वे अति आनंदित हो उठे। ऐसा मनोहर कीर्तन उन्होंने कभी नहीं सुना था। जब सत्ता और बलवंड को यह पता चला कि गुरु साहिब स्वयं कीर्तन करने लगे हैं तथा संगत पहले से भी ज्यादा आने लगी है तो वे

बहुत पछताए।

अन्त में उन्हें किसी ने बताया कि लाहौर में परोपकारी भाई लद्धे के पास जाओ, वही आपकी सहायता कर सकता है। भाई लद्धे ने उनकी बातचीत सुनने के पश्चात् कहा कि "आप ने बड़ा बुरा काम किया है, आप ने गुरु-घर की निंदा की है। मैं आपकी बात को मान सकता हूं, लेकिन गुरु जी ने भी बहुत बड़ी शर्त रखी है कि जो इनकी सिफारिश लेकर आएगा उसका मुंह काला करके गधे पर बिठाया जाएगा।" लेकिन वह बार-बार कहने लगे कि आप का कहा वे नहीं टालेंगे। अंत में भाई लद्धे ने अपना मुंह काला किया तथा एक गधे पर चढ़ कर उनके आगे-आगे चल पड़ा। अमृतसर आकर गधे पर चढ़ कर ही वह गुरु के महल में आ गया। गुरु जी ने भाई लद्धे को पहचान लिया। गुरु जी कहने लगे, "भाई लद्धे तुम तो इनकी सिफारिश लेकर आए हो, परन्तु तुम्हें पता है इन्होंने गुरु-घर की कितनी निंदा की है। अगर ये अपने आप को बख्शाना चाहते हैं तो जिस जुबान से इन्होंने नानक के घर की निंदा की है, उसी जुबान से उस घर की प्रशंसा करें, फिर इनकी बीमारी भी ठीक हो जाएगी।" वे दोनों मान गए और गुरु-घर की प्रशंसा में उन्होंने सत्ता और बलवंड की वार लिखी, जोकि अब गुरु ग्रन्थ साहिब के रामकली राग में पृष्ठ 966 से 968 पर अंकित है।



भाई मंझ

भाई मंझ गांव कंगमई ज़िला होशियारपुर का रहने वाला एक अमीर जमींदार था। वह सखी सरवर का सेवक था और सखी सरवर के प्रचार को बढ़ाने के लिए उसने कई पीरखाने बनाए हुए थे।

एक बार भाई मंझ अपने साथियों सहित निंगाहे पीर की यात्रा पर गया। जब वह वापिस आ रहा था तो उसका किसी सिख के साथ मिलाप हुआ व उसको गुरु नानक देव जी की बाणी सुनने का अवसर प्राप्त हुआ। गुरुबाणी से वह बहुत प्रभावित हुआ तथा उसने अपनी इच्छा प्रकट की कि वह गुरु नानक देव जी की गद्दी पर बैठे गुरु के दर्शन करना चाहता है। उसको बताया गया कि अमृतसर में गुरु अर्जुन देव जी पांचवें नानक के रूप में आत्मिक ज्ञान प्रदान कर रहे हैं।

अमृतसर आकर उसने देखा कि गुरु के सिख बड़ी विनम्रता, श्रद्धा व प्यार से सेवा में लगे हुए थे। निर्माण कार्य भी चल रहा था। सरोवर को देख कर वह बहुत प्रसन्न हुआ और जब उसने अमृत सरोवर की महिमा सुनी तो उसने बड़ी श्रद्धा से स्नान किया। तब वह गुरु दरबार में पहुंचा व अल्लाही कीर्तन सुना। कीर्तन सुन कर वह बड़ा आनंदित हुआ और उसने मन बना लिया कि उसे सिख बन जाना चाहिए। गुरु जी के दर्शन करके वह प्रसन्न हो गया और उसने अनुनय किया, "महाराज! मैं आप जी का सिख बनना चाहता हूं, मुझ पर कृपा करो।" गुरु जी ने कहा, "तुम सखी सरवर के सेवक हो, परन्तु सिख बनना आसान नहीं है। सिखी बाल से भी बारीक व खंडे की धार से भी तीखी है। सखी सरवरी का पथ सरल है। सिख बनने के लिए क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार छोड़ना पड़ता है।"

भाई मंझ ने पुनः सविनय निवेदन किया, "महाराज मैं सब कुछ छोड़ने के लिए तैयार हूं।" लेकिन गुरु जी ने कहा, "तुम सब कुछ कर सकते हो परन्तु सिखी पर सिखी नहीं टिक सकती।" अन्तिम शब्दों ने भाई मंझ को अत्यन्त प्रभावित किया। उसको वास्तविकता का बोध हो गया। वह अपने गांव वापिस आ गया। उसने अपने घर में बना पीरखाना गिरा दिया, जिससे सारा गांव उसके विरुद्ध हो गया। प्रधानता उससे छीन ली गई।

वह पुनः अमृतसर आ गया। गुरु अर्जुन देव जी के दर्शन किए, माथा टेका, लेकिन मुंह से कुछ न बोला। बाकी सिखों की तरह वह भी सेवा में लग गया। वह जंगल में से लकड़ियां काट कर लाता। सारा दिन किसी न किसी सेवा में लगा रहता। एक दिन जब वह लकड़ियों की गठड़ी उठा कर अमृतसर को वापिस आ रहा था तो बड़ी तेज आंधी आई और चारों तरफ अन्धेरा छा गया।

उस अन्धेरे में वह एक कुएं में गिर पड़ा, लेकिन उसने लकड़ियां भीगने न दीं। अपने सिर के ऊपर ही टिकी रहने दीं व स्वयं पाठ करने लगा। जब वह रात्रि होने पर भी डेरे में न पहुंचा तो दूसरे सिखों को चिन्ता हुई और वे उसे ढूंढने निकल पड़े। एक कुएं से उन्हें गुरुबाणी पढ़ने की आवाज़ आई। जब उन्होंने देखा तो भाई मंझ लकड़ियों की गठड़ी सिर पर टिकाए कुएं में खड़ा पाठ कर रहा था। वे उसी समय गुरु के डेरे की ओर भागे व रस्सियां लेकर आए। रस्सी लटका कर उन्होंने भाई मंझ से कहा कि रस्सा पकड़ कर बाहर आ जाओ। लेकिन भाई मंझ ने कहा, "पहले ये सूखी लकड़ियां निकाल लो, उसके बाद मैं भी निकल आऊंगा।"

जब गुरु को इस घटना का पता चला तो वे भी कुएं में पहुंच गए। गुरु जी को कुएं पर देख कर भाई मंझ गुरु जी के चरणों में गिर पड़ा। गुरु जी ने कहा, "भाई मंझ तुम्हारी कमाई आज सफल हुई है, कुछ मांगो।" भाई मंझ ने कहा, "गुरु जी मुझ पर कृपा करो कि मुझे नाम सिमरन कभी विस्मृत न हो व सब्र-सन्तोष से मेरी झोली भर दो।" गुरु जी भाई मंझ की यह बात सुन कर बड़े प्रसन्न हुए और फुरमाया—

"मंझ पिआरा गुरू को, गुर मंझ पिआरा।
मंझ गुरू का बोहिथा, जग लंघण हारा।

भाई मंझ के त्याग को मुख्य रख कर गुरु जी ने उसको अपने [illegible] प्रचारक बना कर भेज दिया।



भाई बुढ्ढू शाह

भाई बुढ्ढू शाह लाहौर का एक सरकारी ठेकेदार था। उसका असली नाम साधु था। वह मजदूरों से ईंटें बनवा कर, फिर भट्ठों में पका कर सरकार को बेचा करता था।

वह गुरु का भी बड़ा प्रेमी था। जब गुरु अर्जुन देव लाहौर में ठहरे थे तो वह उनका बड़ा श्रद्धालु बन गया था।

एक बार जब ईंटें बनवा कर भट्ठों में डालीं तो उन ईंटों के अच्छी तरह पक कर निकलने के लिए उसने गुरु जी से अरदास करने का निवेदन किया। उसने अपनी हवेली में लंगर लगाया तथा गुरु जी व संगत को भी बुलाया। जब संगत लंगर खा रही थी तो वहां लक्खू पटोलिया जो बाद में भाई कमलिया के नाम से प्रसिद्ध हुआ, लंगर खाने के लिए आया। उसके फटे हुए कपड़े देख कर नौकरों ने उसको प्रवेश की अनुमति न दी। उसने बार-बार अन्दर जाने की मिन्नत की लेकिन उसकी एक न सुनी गई।

लंगर खाने के बाद जब एक सिख को अरदास करने के लिए कहा गया और जब उस सिख ने अरदास में कहा कि भट्ठे में डाली गई ईंटें पूरी तरह पक कर निकलें तो बाहर से भाई कमलिया ज़ोर-ज़ोर से बोला, "ये कच्ची ही रहेंगी, ये कच्ची ही रहेंगी। मुझे भूखा रखा गया है। इसके नौकरों ने मुझे अन्दर नहीं जाने दिया और कहते हैं कि लंगर समाप्त हो गया है। इस निर्धन की बद्दुआ अवश्य लगेगी व ईंटें भी कच्ची ही रहेंगी।"

अरदास समाप्ति पर भाई बुढ्ढू शाह ने भाई कमलिया के इन दुर्वचनों के बारे गुरु जी को बताया तो गुरु जी बोले, "ईंटें अब कच्ची ही रहेंगी, क्योंकि निर्धन की कही बात कभी व्यर्थ नहीं जाती। तुम्हारे नौकरों ने उसके फटे हुए कपड़े देख कर उसको अन्दर नहीं घुसने दिया, लेकिन वह एक सच्चा भक्त है और बेपरवाह है।"

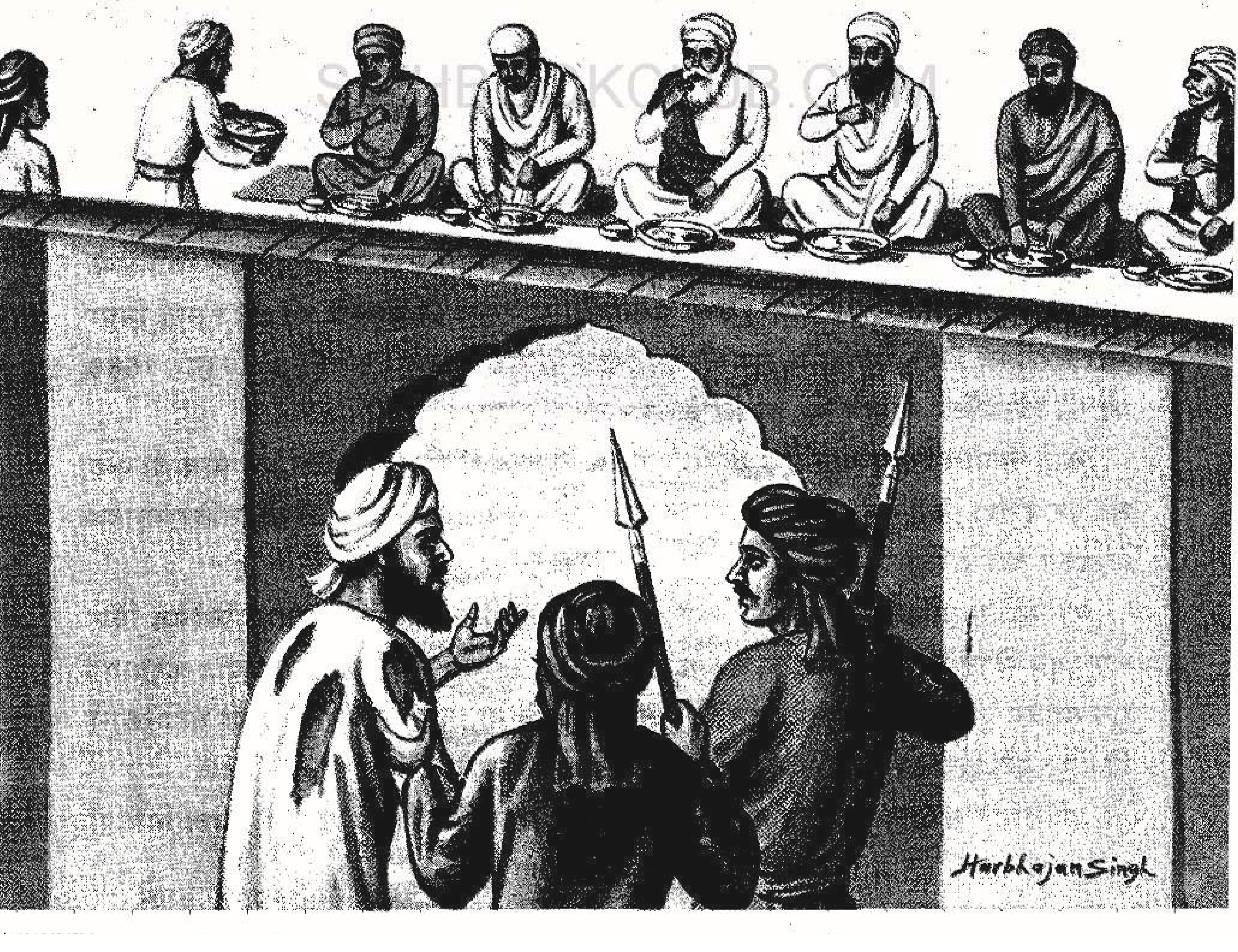
भाई बुढ्ढू शाह अत्यन्त चिंतित हुआ और गुरु जी से कहने लगा कि हमारी अरदास का तो कोई लाभ नहीं होगा? गुरु जी ने कहा, "सच्चे दिल से की गई अरदास कभी निरर्थक नहीं जाती, लेकिन निर्धन की कही बात भी पूरी होनी है। हमारी अरदास का यह लाभ होगा कि तुम्हारे भट्ठे की कच्ची पीली ईंटें भी पकी हुई ईंटों के भाव बिक जाएंगी।"

गुरु जी के कहे वचन भी पूर्ण हुए। उस समय इतनी वर्षा हुई कि लोगों के सब मकान गिर गए। यहां तक कि सरकारी किले की एक दीवार भी गिर पड़ी।

सूबेदार ने पक्की ईंटें ढूंढने की बहुत कोशिश की लेकिन उसको कहीं से भी न मिलीं। सुरक्षा के लिए दीवार बनानी भी ज़रूरी थी। इसलिए उसने भाई बुढ्ढू शाह की कच्ची पीली ईंटें भी पक्की ईंटों के भाव खरीद लीं।

भाई बुद्धू शाह गुरु जी के कहे वचनों पर बड़ा प्रसन्न हुआ तथा धन्यवाद के रूप में कई उपहार लेकर गुरु जी के सम्मुख प्रकट हुआ। उपहार देख कर गुरु जी ने कहा, "ये उपहार तुम्हें भाई कमलिया को भेंट करने चाहिएं, जिसको तुमने उस दिन भूखा रखा था। या तो लंगर लगाए न, अगर लगाए तो फिर किसी गरीब को भूखा नहीं जाने देना चाहिए, क्योंकि निर्धन ही वास्तव में भगवान का रूप होते हैं। तुम भाई लद्धे को लेकर भाई कमलिया को मिलो तथा उसके आगे खाने के उपहार रख कर क्षमा याचना करो। अगर वह आपको क्षमा कर दे तो तुम्हारी ईंटें सदैव पकी हुई ही निकला करेंगी।"

गुरु जी की यह बात मान कर भाई बुद्धू शाह भाई लद्धे को लेकर भाई कमलिया को जा मिला। भाई कमलिया एक सीधा-सादा इन्सान था। अपने आगे उपहार पड़े देख कर वह बड़ा प्रसन्न हुआ तथा भाई बुद्धू शाह को इस शर्त पर क्षमा कर दिया कि "उनके नौकरों को अवश्य दण्ड मिलना चाहिए, जिन्होंने उसे अन्दर जाने से मना कर दिया था।"



श्री हरिमन्दिर साहिब की स्थापना

गुरु अमरदास जी ज्योति ज्योत समाने से पहले गुरु रामदास जी को कह गए थे कि अमृतसर शहर, अमृत सरोवर और हरिमन्दिर साहिब की स्थापना करनी है। लेकिन समय कम मिलने के कारण गुरु रामदास जी अमृतसर शहर तथा अमृत सरोवर का निर्माण ही करवा सके। उन्होंने अमृत सरोवर के मध्य एक थड़ा बनवाया था जहां दरबार लगता तथा कीर्तन होता था। जब गुरु रामदास जी प्रभु ज्योति में विलीन होने जा रहे थे तो उन्होंने गुरु अर्जुन देव जी को विशेष निर्देश दिया था कि वे अमृत सरोवर के बीच एक ऐसा हरिमन्दिर बनवाएं जहां पर प्रत्येक पल कीर्तन होता रहे। गुरु अर्जुन देव जी ने उनकी आज्ञा का पालन करने के लिए यह निर्णय किया कि उस थड़े पर ही ऐसा मन्दिर बनाया जाए, जिसके समान कोई अन्य मन्दिर न हो। जहां कीर्तन के सिवाय कुछ न हो, केवल नाम सिमरन ही हो।

पहले गुरु जी ने निर्माण के लिए स्वयं योजना बनाई। उन्होंने यह सोचा कि हरिमंदिर साहिब के चार द्वार रखे जाएं। ये द्वार किसी विशेष दिशा की ओर न हों, बल्कि दो-दो दिशाओं के बीच एक-एक द्वार हो। गुरु साहिब जब दो वर्ष लाहौर में रुके तो उनका साईं मियां मीर के साथ बहुत प्रेम हो गया। साईं जी भी गुरु-घर के अनन्य भक्त बन गए थे।

जब हरिमंदिर साहिब की आधारशिला रखने का प्रश्न उत्पन्न हुआ तो गुरु जी ने आधारशिला रखने हेतु योग्य महापुरुष साईं मियां मीर को ही चुना। साईं मियां मीर हिन्दुओं व मुसलमानों के सांझे पीर थे। एक निम्न व्यक्ति से लेकर बादशाह तक उसके समक्ष शीश झुकाते थे। गुरु जी स्वयं लाहौर गए और साईं मियां मीर को हरिमंदिर साहिब के निर्माण हेतु सविस्तार समझाया। उन्हें आधारशिला रखने की प्रार्थना की गई। साईं मियां मीर तुरंत सहमत हो गए और गुरु जी के साथ अमृतसर आ गए। उन्होंने 3 अक्तूबर 1588 को श्री हरिमंदिर साहिब की आधारशिला रखने की रस्म अदा की।

साईं मियां मीर ने चार ईंटें चारों दिशाओं के मध्य में और एक चारों के बीच नींव के तट पर रखी। फिर गुरु साहिब ने समस्त मिस्त्रियों को बुलाया और उन्हें हरिमंदिर साहिब के नक्शे बारे समझाया।

हरिमंदिर साहिब की कुर्सी सरोवर के जल से ऊंची करके नीचे मेहराब निर्मित किए गए। पूर्व दिशा की ओर हरि की पउड़ी बनाई गई और चहुं ओर परिक्रमा तैयार करवाई। गुरु साहिब ने सम्पूर्ण निर्माण अपने निरीक्षण में करवाया। कोई भी वस्तु घटिया नहीं लगने दी। गुरु जी इलायची बेर के नीचे बैठ कर निरीक्षण करते थे।

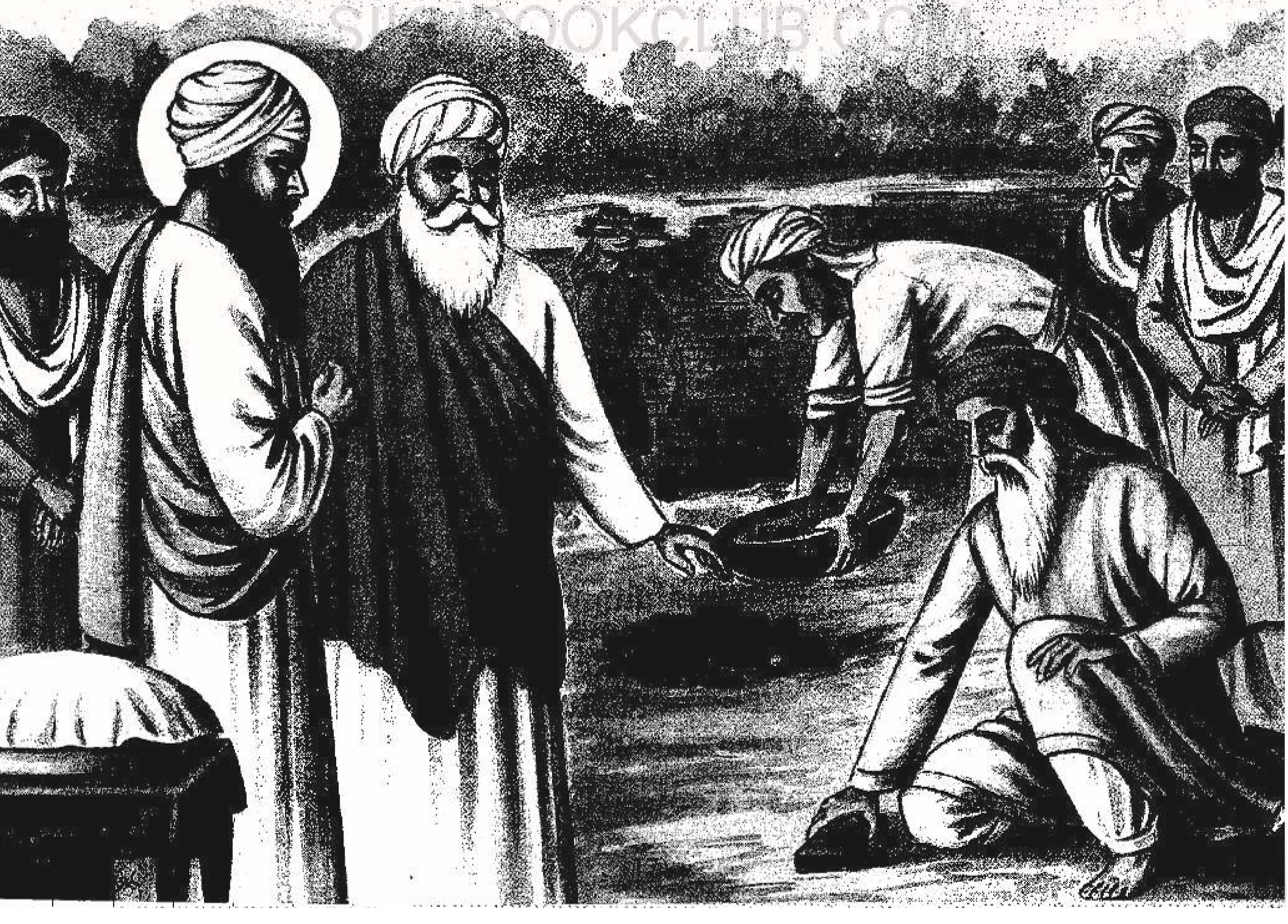
हरिमंदिर साहिब का निर्माण पूर्ण होने में पूरे तीन वर्ष का समय लग गया। निर्माण

कार्य सम्पूर्ण हो जाने पर गुरु जी ने ईश्वर का धन्यवाद करते हुए सूही राग में यह शब्द उच्चारण किया:-

संता के कारजि आपि खलोइआ हरि कंमु करावणि आइआ राम॥
धरति सुहावी तालु सुहावा विचि अंम्रित जलु छाइआ राम॥ (पृष्ठ ७८३)

श्री हरिमंदिर साहिब के निर्माण के पश्चात् नित्य का दरबार यहां लगने लगा। कीर्तनिए यहां पर कीर्तन करके संगत को आनंदित करने लगे।

श्री हरिमंदिर साहिब की रचना भी अलौकिक थी। मुसलमान पश्चिम की ओर शीश झुकाते हैं, जबकि हिन्दू पूर्व की ओर प्रार्थना करते हैं। लेकिन हरिमंदिर साहिब के द्वार न पूर्व की ओर हैं और न ही पश्चिम की ओर। चारों द्वार प्रत्येक समय खुले रहते हैं और प्रत्येक वर्ण को वहां आने की छूट है। किसी को किसी तरह की कोई बंदिश नहीं है। यह सर्वप्रथम एक ऐसा पूजा स्थल है जोकि धरती से नीचा है। सीढ़ियां उतर कर दर्शनों के लिए जाना पड़ता है। अर्थात पहले अभिमान का त्याग करना पड़ता है और विनम्र होकर वहां जाना पड़ता है।



तरनतारन बसाना

गुरु जी ने सखी सरवरों के प्रचार को बाधित करने के लिए सारे माझे का भ्रमण करने का निश्चय किया। वे जंडियाला, खडूर, गोइंदवाल, चोल्हा साहिब व खानपुर गांव से होते हुए खारा गांव पहुंचे। उन्होंने खारा गांव के बाहर एक रमणीय स्थल देख कर वहां निवास किया। वहां निर्मल जल का एक कुण्ड था और चारों ओर आमों, बेरों तथा आडुओं आदि के बाग थे। गुरु जी ने ऐसे रमणीय स्थल पर एक नगर बसाने का मन बनाया। उन्होंने अपने सिखों के माध्यम से योग्य भूमि की खरीद की। उस जल कुण्ड को एक पक्का सरोवर तथा साथ ही एक धर्मशाला के निर्माण हेतु उन्होंने वहां पर ईंटों के भट्ठे तैयार करवाए।

वे एक दिन सरोवर को पक्का करवाने की सेवा करवा रहे थे कि वहां पर एक योगी आ गया। योगी ने गुरु साहिब को कहा कि उसके पास राख की एक पोटली है। इस राख की यह करामात है कि यदि इसको लोहे के साथ रगड़ा जाए तो वह चांदी बन जाएगा। यदि इसको तांबे के साथ रगड़ा जाए तो वह सोना बन जाएगा। उसकी यह बात सुन कर गुरु साहिब ने पूछा कि इस में कोई और भी करामात है तो उस योगी ने कहा कि यदि इसे पानी में फैंक दिया जाए तो उस पानी में स्नान करने से कुष्ठ रोग का निवारण हो जाता है। गुरु साहिब ने पोटली उससे पकड़ ली और सारी राख सरोवर में फैंक दी। योगी यह देख कर बहुत दुखी हुआ, लेकिन गुरु जी ने कहा कि माया तो मानव में अहंकार, क्रोध तथा लोभ उत्पन्न करती है, किन्तु यह तो जन-कल्याण का कार्य है। जो भी कुष्ठ रोगी इस सरोवर में स्नान करेगा, उसका रोग निवृत्त हो जाएगा।

एक दिन गुरु जी सैर के लिए जा रहे थे तो मार्ग में उन्होंने देखा कि चार व्यक्ति एक पीड़ित मनुष्य को चारपाई पर लिटा कर उठाए ले जा रहे थे। गुरु जी ने उन्हें रोका और पूछा कि इस रोगी व्यक्ति को आप कहां ले जा रहे हो और यह कौन है?

उन्होंने कहा, "यह हमारे पिता जी हैं और मुरादपुर गांव के चौधरी हैं। इन को कुष्ठ रोग ने बहुत सताया है। अब ये कहते हैं कि इनको ब्यास दरिया में बहा दिया जाए। इसलिए हम इन्हें ब्यास दरिया में जल प्रवाह करने के लिए जा रहे है।" गुरु जी ने उन्हें आदेश दिया कि चौधरी को दरिया में बहाने की आवश्यकता नहीं है। इनको मेरे साथ लाओ और सरोवर में स्नान करवाओ। दो तीन दिन स्नान करके और गुरुबाणी का पाठ सुनने से ये बिल्कुल स्वस्थ हो जाएंगे।

गुरु साहिब के ये वचन सुन कर चौधरी के पुत्र बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने चौधरी की चारपाई को सरोवर के किनारे लाकर रख दिया। फिर आदेशानुसार उन्होंने अपने पिता को

सरोवर में स्नान करवाया। पहले ही दिन स्नान करने से चौधरी ने अपने आप को कुछ-कुछ स्वस्थ और रोग की पीड़ा से राहत अनुभव की। जो उसके ज़ख्म बह रहे थे वे अब ठीक हो रहे थे। वह नित्य प्रातः व सायं को कीर्तन श्रवण करता और दो बार सरोवर में स्नान करता। कुछ ही दिनों में वह बिल्कुल आरोग्य हो गया।

चौधरी का कुष्ठ रोग ठीक हो जाने के पश्चात् गुरु जी ने वहां पर कुष्ठ रोगियों के लिए एक आश्रम खोल दिया, जहां पर देश के विभिन्न भागों से कुष्ठ रोगी आकर रहते थे। वे नित्य बाणी का कीर्तन श्रवण करते तथा सरोवर में स्नान करते। जब वे आरोग्य हो जाते थे तो अपने-अपने घरों को लौट जाते थे। उनमें से कुछ तो वहीं पर तरनतारन शहर में ही बस जाते थे। सरोवर का निर्माण अभी सम्पूर्ण नहीं हुआ था कि अमानत खां गुरु जी के भट्ठों से जबरन ईंटें उठा कर ले गया। वह अपने पिता की स्मृति में नूर की सराय बना रहा था। जब महाराज को इस बात का पता चला तो उन्होंने कहा कि ये ईंटें जिस कार्य हेतु तैयार की गई हैं, वहीं पर लगेंगी। जिस बल पर ये उठाई गई हैं, उसी बल से ये वापिस भी आएंगी। हुआ भी ऐसे ही कि तत्पश्चात् सरदार बुद्ध सिंघ और सरदार जस्सा सिंघ रामगढ़िया ने नूरदीन की सराय की नींव की ईंटें भी उखाड़ कर सरोवर की परिक्रमा में लगवा दी।



करतारपुर

तरनतारन के निर्माण के पश्चात् गुरु जी ने दोआबा को अपने प्रचार का केन्द्र बनाया। दोआबे में आकर गुरु जी को ऐसा अनुभव हुआ कि यहां पर भी कोई शहर बसाना चाहिए ताकि सिखी का प्रचार सरलता से हो सके। जब वे डल्ले में ठहरे हुए थे तो यहीं पर जालंधर का नवाब नज़ीम खां उनके दर्शन करने के लिए आया। वह गुरु जी की शिक्षा व सांझे लंगर को देख कर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने गुरु जी को विनती की कि महाराज! कौन-सा मज़हब अच्छा है। तब गुरु जी ने उत्तर दिया कि मज़हब तो सभी अच्छे हैं, किन्तु बात तो अमल करने की है। जो व्यक्ति सभी भ्रम व पाखण्ड आदि त्याग कर अल्लाह की बंदगी करता हो, उसे सभी इंसान अल्लाह की संतान प्रतीत होते हैं।

तदुपरांत नवाब ने यह विनती की कि महाराज! जालंधर के निकट किसी नगर का निर्माण करवाया जाए, जहां आप मानवता के कल्याण के लिए ठहर सकें। उसने यह भी कहा कि जालंधर के निकट उसकी बहुत भूमि है, वह उन्हें नगर का निर्माण करने हेतु मुफ्त दे सकता है। लेकिन गुरु जी ने कहा कि वह भूमि मुफ्त में नहीं ले सकते, हम इस भूमि की आप को कीमत दे देंगे ताकि नगर का अस्तित्व स्वतंत्र हो। नवाब गुरु जी की बात मान गया और गुरु जी करतारपुर वाले स्थान पर आ गए।

भूमि का पट्टा अपने नाम करवा कर गुरु जी ने दिसम्बर 1594 में नगर की आधारशिला अपने कर कमलों द्वारा रखी। मोढ़ी गाड़ने के स्थान पर टाहली का एक बहुत बड़ा स्तम्भ गाड़ा गया। कुछ रिहायशी मकान बनाने के पश्चात् गुरु जी ने एक बड़ा कुआं लगवाया। उन्होंने इस कुएं का नाम 'गंगसर' रखा। जब कुएं का निर्माण सम्पूर्ण हुआ तो गुरु जी ने समस्त संगत को आदेश किया कि अब किसी को गंगा जाने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि अब इस कुएं में ही गंगा का निवास है। गंगसर का स्नान गंगा-स्नान से भी उत्तम है। एक सिख ने इसके बारे में कुछ शंका प्रकट की तो गुरु जी ने उस सिख को इसी कुएं में गंगा बहती दिखा दी।

करतारपुर का निर्माण पूरे उत्साह से चल रहा था। गुरु जी ने वहां का निर्माण कार्य भाई कल्याण व भाई भगतू जी के सुपुर्द किया और आप वहां कुछ समय ठहरने के उपरांत अमृतसर आ गए।

एक दिन माता गंगा जी की सेविका भीगे कपड़ों को सुखाने हेतु ऊपर छत पर खिलार रही थी। सिख संगत ने गुरु-घर को बहुत ही मूल्यवान वस्त्र भेंट किए थे। जब पृथी चन्द की पत्नी ने ये वस्त्र देखे तो वह ईर्ष्याग्नि में जल उठी। वह पृथी चंद को कहने लगी कि देखो,

अर्जुन देव के घर कितने मूल्यवान वस्त्र संगतों द्वारा भेंट किए गए हैं, हमें तो कोई पूछता ही नहीं। यह बात सुन कर पृथी चंद अपनी पत्नी को कहने लगा, "तुम चिन्ता न करो, अर्जुन देव के तो कोई संतान है नहीं, वह तो निःसंतान ही इस संसार से चला जाएगा। ये समस्त मूल्यवान पदार्थ तो तुम्हारे ही पुत्र को मिलेंगे। इसलिए थोड़े ही दिनों की बात है, सब्र से काम लो। वास्तव में गुरु साहिब की शादी हुए बारह वर्ष हो गए थे, लेकिन उनके कोई संतान नहीं थी।

यह सम्पूर्ण वार्तालाप माता गंगा की दासी छिप कर सुन रही थी। उसने सारी बात जाकर माता गंगा को सुना दी। माता जी यह बात सुन कर बहुत उदास हो गए। माता गंगा जी ने यह सारी आप-बीती गुरु अर्जुन देव जी को बताई और कहा कि "क्या मैं समस्त आयु निःसंतान ही रहूंगी? मुझे इस जीवन का क्या लाभ है? आप सभी संगतों की मनोकामनाएं पूर्ण करते हो, मुझ कर्महीन को भी एक पुत्र प्रदान करो।"

गुरु जी ने कहा, "गुरु-घर में किसी भी वस्तु की कमी नहीं है। ब्रह्म-ज्ञानी बाबा बुड्ढा जी के पास जाओ। उनको प्रसन्न करके उनसे पुत्र की दात प्राप्त करो।"

अगले दिन ही माता गंगा जी बहुत बढ़िया स्वादिष्ट पकवान बना कर कुछ दासियों सहित रथ पर सवार हो कर बीड़ साहिब पहुंच गई।



बाबा बुड्ढा जी

बाबा बुड्ढा जी का जन्म भाई सुघा जी के गृह माता गौरां जी के गर्भ से गांव कत्थूनंगल, ज़िला अमृतसर में 7 कार्तिक संवत् 1563 को हुआ था। माता-पिता ने आपका नाम बूड़ा रखा था। जब आप सात-आठ वर्ष के हुए तो आप अपने माता-पिता के कार्य में सहयोग देने लगे। आप चौपायों को बाहर चराने के लिए ले जाते थे। एक दिन गुरु नानक देव और भाई मरदाना धर्म प्रचार करने हेतु कत्थूनंगल की ओर आ गए। उन्होंने गांव के बाहर दीवान लगाया। बूड़ा चौपायों को छोड़ कर गुरु जी के दीवान में उपस्थित हो गया। वह गुरु जी के प्रवचन सुन कर अत्यंत प्रभावित हुआ और दीवान की समाप्ति के पश्चात् भी वह वहां बैठा रहा। गुरु नानक देव जी ने उसे अपने पास बुलाया और पूछा, "तुम्हारा नाम क्या है।" उसने अपना नाम बूड़ा बताया। तदुपरांत वह गुरु जी का अत्यंत श्रद्धालु हो गया और उसने विनती की कि उसे भी करतारपुर में सेवा का अवसर प्रदान किया जाए। उसके अथाह प्रेम को देख कर गुरु जी ने उसे उसके माता-पिता से मांग लिया।

अल्पायु में ही सूझ वाली बातें करने के कारण गुरु जी उसे बुड्ढा कहते थे तथा उसका नाम ही बाबा बुड्ढा पड़ गया। करतारपुर में जाकर उसने गुरु-घर की बहुत सेवा की और प्रभु सिमरन की भी उसकी कोई सीमा न रही। उसने कड़े परिश्रम से पढ़ाई की और गुरु नानक देव की समस्त बाणी कण्ठस्थ कर ली।

जब गुरु नानक देव ने अपने उत्तराधिकारी का चयन करना था तो केवल दो सिख ही उनके द्वारा रखी गई परीक्षा में उत्तीर्ण हो सके। एक थे अंगद देव तथा दूसरे बाबा बुड्ढा जी। गुरु साहिब ने जब बाबा बुड्ढा जी को गुरुगद्दी का भार उठाने को कहा तो बाबा बुड्ढा जी ने विनम्र प्रार्थना की, "महाराज! गुरसिखी की दात बख्शो और यह वरदान दो कि आप कभी भी मुझ से दूर न हों।" गुरु नानक देव जी उस पर अति प्रसन्न हुए और कहा, "हम तुम से कभी भी दूर नहीं होंगे और यदि तुम गुरु नहीं बनना चाहते तो भविष्य में वही गुरु माना जाएगा, जिसकी पुष्टि आप करोगे। तुम और तुम्हारे वारिस गुरु-घर के संरक्षक होंगे।" इस तरह गुरु नानक देव जी आपको अथाह बख्शिशें प्रदान कर गए।

इतिहास साक्षी है कि तदुपरांत आप ने जो गुरु-घर की सेवा की है, उस की अन्य कोई उदाहरण नहीं है। गुरु अंगद देव जी को तिलक लगा कर आप ने गुरुगद्दी की मोहर लगाई। जब गुरु अंगद देव जी संघर क्षेत्र में माई भराई के घर में आलोप हो गए तो आप ने ही उनको प्रकट किया और नया सिखी का केन्द्र बनाने हेतु खडूर साहिब ले गए और सिखी के प्रचार का कार्य आरम्भ कर दिया। गुरु अमरदास, गुरु रामदास, गुरु अर्जुन देव तथा गुरु

हरिगोबिंद साहिब को तिलक लगा कर गुरु पद की पुष्टि के साक्षी बने। उन दिनों बाबा बुड्ढा जी गुरु की बीड़ के स्थान पर रहा करते थे। वहां वे गुरु-घर के दुधारु चौपायों की देखभाल किया करते थे। इन दुधारु चौपायों का दूध गुरु-घर के लंगर में जाता था।

जब माता गंगा जी अपनी सखियों के साथ इस पर सवार होकर गुरु की बीड़ के निकट पहुंचे तो बाबा जी ने धूल उड़ती देख कर कहा, "यह कौन आ रहा है?" उनके सिखों ने बताया कि गुरु के महल आ रहे हैं। बाबा बुड्ढा जी के मुंह से सहसा ही वचन निकल पड़े कि "गुरु के महलों को कैसी भाग-दौड़ पड़ गई।" माता गंगा जी ने जब बाबा बुड्ढा जी के वचन सुने तो उन्होंने अपने रथ वहीं पर रोक लिए। उन्होंने बहुत निराशा अनुभव की, कि वर लेने के स्थान पर श्राप ले लिया। वे अमृतसर लौट गए। गुरु अर्जुन देव जी को सारी वार्ता सुनाई। गुरु जी ने माता जी की बात सुन कर कहा कि आप प्रात: उठकर चक्की में मिस्सा आटा पीसो, फिर स्वयं रोटी पकाओ, लस्सी और मक्खन तैयार करो। साथ में कुछ प्याज़ भी ले जाओ। ये सभी पदार्थ अपने सिर पर रख कर लेकर जाओ। माता गंगा जी ने ऐसे ही किया। जब बाबा बुड्ढा जी ने माता जी को आते देखा तो कहने लगे, आज तो बहुत भूख लगी थी, ऐसा प्रतीत होता है कि माता जी अपने पुत्र हेतु खाना लाए हैं। फिर वह माता गंगा द्वारा लाया खाना खाने लगे और प्याज़ तोड़ते हुए उन्होंने वर प्रदान किया कि आप के घर ऐसा बलशाली पुत्र पैदा होगा जो मुगलों के सिर भी ऐसे ही तोड़ेगा, जैसे मैं यह प्याज़ तोड़ रहा हूं।



पृथी चन्द की विरोधता

जब पृथी चन्द और उसकी पत्नी कर्मो को पता चला कि माता गंगा जी मां बनने वाली हैं तो वह बहुत दुखी हुए। ईर्ष्यावश वे हर समय उन्हें कुवचन बोलते रहते। घर में हर समय क्लेश रहने लगा। गुरु जी ने अपने ईर्ष्यालु भाई से दूर रहने के बारे में सोचा। वह अमृतसर से चार मील दूर वडाली नगर में चले गए। यहां के समस्त नगर वासी गुरु-घर से अत्यन्त प्रेम करते थे और गुरु जी के वहां आ जाने पर सभी नगर वासी बहुत प्रसन्न हुए। गांव के चौधरी ने एक बहुत बड़ी हवेली खाली कर दी और गुरु जी माता गंगा जी सहित वहां रहने लगे। संगतों को जब पता चला तो वहां दरबार लगने लग पड़ा और कीर्तन का प्रवाह चलने लगा।

बाबा बुड्ढा जी के वर अनुसार 6 आषाढ़ सम्वत् 1652 ई: को श्री गुरु हरिगोबिंद साहिब जी का जन्म गांव वडाली में हुआ। यह समाचार मिलते ही परिवार और संगत में खुशी की लहर दौड़ गई। लेकिन दूसरी ओर बाबा पृथी चन्द और उसकी पत्नी कर्मो का हृदय दुख से पीड़ित होने लगा।

बाबा बुड्ढा जी को जब पता चला तो वह गुरु की बीड़ से चलकर वडाली गांव आए। बाबा जी ने साहिबजादे के जन्म की गुरु अर्जुन देव जी को बधाई दी और परमात्मा के समक्ष बालक की लम्बी आयु की प्रार्थना की। साहिबजादे के दर्शन करके आप ने उसका नाम 'हरिगोबिंद' रखा।

इधर गुरु जी लोगों पर परोपकार कर रहे थे, उधर पृथी चन्द साहिबज़ादा हरिगोबिंद को मारने की योजनाएं बना रहा था। सबसे पहले उसने एक दाई को काफी धन देकर खरीद लिया और उसे कहा कि वह अपने स्तन को ज़हर लगा कर बालक हरिगोबिंद को स्तन पान करवाए। घर वाले उस पर पूर्ण विश्वास करते थे। वह बालक को खिलाती हुई घर की छत पर ले गई और बालक के मुंह में ज़हरयुक्त स्तन डालने लगी। किन्तु बालक हरिगोबिंद ऊंची-ऊंची रोने लग पड़ा। जब माता गंगा जी और अन्य दासियों को उस दाई के कृत्य का पता चला तो वह मान गई कि उसे पृथी चन्द ने धन का लालच देकर भेजा है। स्तन को जहर चढ़ जाने के कारण उसकी मृत्यु हो गई। लेकिन पृथी चन्द कहां पीछे हटने वाला था, उसने एक सपेरे को भेजा कि सांप का तमाशा दिखाते-दिखाते एक विषैला सांप हरिगोबिंद की ओर छोड़ दे। सपेरा बीन बजाता और तमाशा दिखाता हुआ गुरु जी के घर पहुंच गया। सभी सेवक और माता जी बालक हरिगोबिंद के साथ तमाशा देखने के लिए आ गए। जब सपेरे ने देखा कि बालक सांपों को देख कर हंस रहा है तो उसने एक सांप उस ओर भेज

दिया। साहिबज़ादे ने जब सांप को आता देखा तो वह भयभीत नहीं हुआ, बल्कि उसने सांप को सिर से बलपूर्वक पकड़ लिया और उसके सिर को धरती से रगड़ कर उसे वहीं पर मार दिया। सभी यह कौतुक देख कर चकित हो गए।

फिर पृथी चन्द ने साहिबज़ादे के खिडावे ब्राह्मण को खरीद लिया। उसे कहा गया कि वह साहिबज़ादे को दही में विष मिला कर खिला दे। लेकिन जब वह विषयुक्त दही साहिबज़ादे को देने लगा तो उसने वह खाने से इन्कार कर दिया और चिल्लाने लगा। सभी घर वाले वहां आ गए। उन्होंने वह दही एक कुत्ते को डाल दिया। कुत्ता वह दही खाकर उसी समय तड़पता हुआ मर गया। ब्राह्मण को भी उसी समय ऐसी असह्य पीड़ा हुई कि वह वहीं पर तड़प कर मर गया।

पृथी चन्द की जब सभी योजनाएं असफल हो गईं तो उसने साहिबज़ादे के एक हम-उम्र नंद राम द्वारा उनकी मृत्यु की योजना बनाई। उसने नंद राम के चाचा को अपने अधीन करके उसे कहा कि वह नंद राम को दो जेबों वाली कमीज़ बनवा दे और उसकी एक जेब में शुद्ध मिठाई तथा दूसरी में विषयुक्त मिठाई डलवा दे। जब नंद राम साहिबज़ादे के साथ खेलने हेतु वहां जाए तो नंद राम स्वयं शुद्ध मिठाई खा ले और साहिबज़ादे को विषयुक्त मिठाई खिला दे। किन्तु जब वे दोनों खेल रहे थे तो नंद राम यह भूल गया कि उसने कौन-सी जेब में शुद्ध मिठाई डाली है और किस में विष-युक्त मिठाई। उसने विष-युक्त मिठाई स्वयं खा ली और शुद्ध मिठाई साहिबज़ादे को दे दी। नंद राम की वहीं पर ही मृत्यु हो गई।



सुलबी खां और सुलही खां

गुरु जी ने जब यह अनुभव किया कि वडाली में रहते हुए कोई न कोई घटना घटित होती ही रहती है। इसलिए आप सपरिवार अमृतसर आ गए। साहिबज़ादे पर किए जाने वाले योजनाबद्ध आक्रमणों के कारण सिख संगत ने बाबा पृथी चन्द को इतनी फिटकारें दीं कि वह अपना डेरा उठा कर 'हेहरीं' अपने ससुराल गांव में चला गया।

अमृतसर की भांति ही उसने वहां हरिमंदिर साहिब बनाया और गद्दी लगा कर बैठने लगा, किन्तु संगत को कहां से पकड़ कर लाता?

जब पृथी चन्द ने देखा कि आमदन के साधन बिल्कुल समाप्त हो रहे हैं तो उसने हुकूमत की सहायता से गुरु अर्जुन देव जी को अमृतसर में से निकालने की योजनाएं बनाईं। वह लाहौर जाकर हाकिमों को मिलने लगा। उनको कीमती उपहार भेंट करने लगा। कई हाकिम उसके घनिष्ठ मित्र बन गए। बाबा महादेव बेशक दुनिया के दुखों-सुखों से परे थे, वह भी कई बार पृथी चन्द को समझाने गए, किन्तु जब पृथी चन्द उसकी कोई बात न सुनता तो उसे सहज-स्वभाव में श्राप भी दे देता। वह कहते कि तुर्की स्वयं ही समाप्त हो जाएंगे।

एक बार पृथी चन्द को यह सूचना मिली कि उसका एक मित्र हाकिम सुलही खां उसके ससुराल गांव हेहर आ रहा है। पृथी चन्द विनम्र होकर उसे आगे जाकर मिला और अपना दुख उसके समक्ष रखा। सुलही खां ने उसकी शिकायत को बड़े धैर्य से सुना और कहा, "देखो! अभी मैं अत्यावश्यक कार्यों में व्यस्त हूं। इसलिए मैं अपने भतीजे सुलबी खां को निर्देश दूंगा कि वह अमृतसर जाए और गुरुगद्दी का छीना हुआ अधिकार तुझे वापिस दिला दे। सुलही खां का संदेश लेकर वह स्वयं सुलबी खां को जा मिला। लेकिन सुलबी खां जब कत्लेआम करता हुआ ब्यास पहुंचा तो दरिया पार करने से पहले ही उसका अपने एक अधिकारी हसन अली के साथ झगड़ा हो गया। हसन अली एक शूरवीर योद्धा था। उसने क्रोध में आकर सुलबी खां की गर्दन पर वार कर उसे खत्म कर दिया।

जब पृथी चन्द को यह पता चला कि सुलबी खां को कत्ल कर दिया है, तो उसे बहुत दुख हुआ। उसकी सभी बनाई हुई योजनाएं विफल हो गईं। वह सुलही खां के पास गया और उसकी मिन्नतें करके उसे अमृतसर पर आक्रमण करने के लिए मना लिया। पृथी चन्द ने उसे काफी धन देने का वायदा किया। जब सिखों को इस बात का पता चला तो उन्होंने गुरु जी को विनती की कि तुरंत बादशाह अकबर को सूचना देनी चाहिए। किन्तु गुरु जी ने उनकी यह बात प्रवान न की और कहा, "हमें वाहिगुरु पर विश्वास करना चाहिए और उसकी रज़ा में ही रहना चाहिए।"

सुलही खां अपनी सेना लेकर हेहर आ पहुंचा। पृथी चन्द ने उसकी बहुत सेवा की। सायं को पृथी चन्द उसे अपना नया शुरू किया ईंटों का भट्ठा दिखाने के लिए ले गया। सुलही खां बहुत अभिमानी था। उसके पास एक बहुत ही बढ़िया नस्ल का घोड़ा था। उस घोड़े पर भी उसे बहुत अभिमान था। जब उसका घोड़ा जलते हुए भट्ठे के निकट पहुंचा तो वह एक पक्षी के उड़ने के कारण डर गया और छलांग लगा कर भट्ठे की दीवार फांद कर सुलही खां सहित उस भट्ठे में जा गिरा। पृथी चन्द शोर मचाता ही रह गया और सुलही खां सड़ कर राख हो गया। पृथी चन्द का यह प्रयत्न भी विफल हो गया, सेना वापिस लाहौर लौट गई। लौटते समय सेना के छोटे कमांडर ने पृथी चन्द को सुलही खां की मृत्यु का जिम्मेदार ठहराया और उसे प्रताड़ित करके गया कि उसे इसका परिणाम भुगतना पड़ेगा।

जब पृथी चन्द को यह पता चला कि मुगल हुकूमत भी उसके विपरीत हो गई है तो वह शांत होकर बैठ गया और फिर कोई शरारत करने की कोशिश नहीं की।



आदि (गुरु) ग्रंथ साहिब की बीड़

बाबा पृथी चन्द बेशक अपनी हार मान चुका था, परन्तु उसका पुत्र एक ग्रंथ तैयार कर रहा था, जिस में उसने चार गुरुओं की बाणी और पीरों–फकीरों की वारें शामिल की थीं। उसने गुरु नानक के नाम अधीन अपनी भी बाणी उच्चारण की थी। उसने गुरुओं और अपनी बाणी का मिश्रण इस प्रकार कर दिया कि पढ़ने–सुनने वाला सच्ची बाणी और कच्ची बाणी का निर्णय नहीं कर सकता था।

गुरु अर्जुन देव जी को जब यह पता चला तो उन्होंने भाई गुरदास और बाबा बुड्ढा जी के साथ मशविरा करके सभी गुरुओं और भक्तों की बाणी को संकलित करके एक ग्रंथ का रूप देने का निर्णय किया। बाबा बुड्ढा जी को उन्होंने दरबार साहिब की जिम्मेदारी सौंप दी और स्वयं रामसर में इस कार्य को पूर्ण करने में व्यस्त हो गए। उन्होंने रामसर में सबसे पहले एक सरोवर बनवाया और सरोवर के किनारे तम्बू लगवा दिए।

गुरु नानक देव जी अपनी सम्पूर्ण बाणी गुरु अंगद देव जी को दे गए थे और गुरु अंगद देव जी उसमें अपनी बाणी शामिल करके गुरु अमरदास जी को सौंप गए। गुरु अमरदास जी ने भी स्वयं काफी बाणी की रचना की और ज्योति विलीन होने से पूर्व अपनी और पहले गुरुओं की बाणी गुरु रामदास जी के सुपुर्द कर गए तथा गुरु रामदास जी भी अपनी रचित बाणी सहित समस्त पूर्व गुरुओं की बाणी गुरु अर्जुन देव जी को दे गए थे। इस प्रकार गुरु अर्जुन देव जी के पास गुरु साहिबान की हस्त–लिखित बाणियां विद्यमान थीं। इन बाणियों के उपरान्त गुरु नानक देव जी ने भक्तों की बाणियां भी सम्पादित की थीं और टिप्पणी सहित वह भी उन्हीं के पास थीं।

गुरु अर्जुन देव जी ने सम्पूर्ण बाणी रागों के अनुसार यथाक्रम कर दी, किन्तु बाणी को उसी प्रकार रखा जैसे यह प्रकट हुई थी। उन्होंने भाई बन्नों को बीड़ की सुन्दर जिल्दबन्दी करवाने हेतु लाहौर भेजा। उसने बीड़ की जिल्दबन्दी करवाते समय उसका एक प्रतिरूप भी तैयार कर लिया। उस बीड़ को गुरु साहिब ने प्रवान न किया और 'खारी' बीड़ होने का श्राप दिया।

जब अन्य भक्तों को पता चला कि गुरु साहिब ग्रंथ तैयार कर रहे हैं, जिस में भक्तों की बाणी भी शामिल की जा रही है तो कई भक्त अमृतसर आकर गुरु जी को मिले, किन्तु गुरु जी ने ऐसे भक्तों की बाणी, जो गुरु–आशय के अनुकूल नहीं थी, उस ग्रंथ में शामिल करने से इन्कार कर दिया। इस प्रकार भक्त कान्हा, छज्जू, पीलू तथा शाह हुसैन निराश लौट गए।

आदि ग्रंथ को सम्पूर्ण करने में तीन वर्ष लग गए। जब बीड़ सम्पन्न हो गई तो दूर–दूर

तक सिखों को संदेश भेजे गए कि भाद्रों शुदि एकम सम्वत् 1661 को आदि ग्रंथ की बीड़ का प्रकाश श्री हरिमंदिर साहिब में किया जाएगा। संगत पूर्ण उत्साह से वहां पहुंची। गुरु जी ने संगत को सम्बोधित करते हुए कहा, "यह ग्रंथ संसार सागर तैरने हेतु एक जहाज़ है। जो भी व्यक्ति चित्त-मन से इसको श्रवण, पठन और मनन करेगा, वह सहज ही तर जाएगा।"

बीड़ को बाबा बुड्ढा जी के सिर पर रख कर दरबार साहिब में लाया गया। बाबा बुड्ढा जी को ही प्रथम ग्रंथी नियुक्त किया गया। इस ग्रंथ के उस समय 974 पृष्ठ थे।

हरिमंदिर साहिब पहुंच कर बीड़ को सजाए गए तख्त पर सुशोभित किया गया। गुरु जी ने बाबा बुड्ढा जी को वाक् लेने के लिए कहा। बाबा बुड्ढा जी ने वाक् लिया। फिर रात्रि का समय हुआ तो बाबा जी ने पूछा कि ग्रंथ साहिब को रात्रि विश्राम कहां करवाना है? गुरु जी ने उत्तर दिया, "इस नवनिर्मित पलंग पर नए वस्त्र बिछा कर टिकाओ, जो कि विशेष तौर पर मेरे कमरे में रखा है।" इस तरह रात्रि को आदि ग्रंथ को नए पलंग पर विश्राम करवाया गया और गुरु जी ने स्वयं अपना बिस्तर ज़मीन पर बिछा लिया।

इससे हमें पता चलता है कि गुरु जी ग्रंथ साहिब को कितना सम्मान देते थे।



आदि ग्रंथ बारे अकबर के पास शिकायत

जब गुरु जी ग्रंथ साहिब की बीड़ तैयार करवा रहे थे तो कई भक्त भी अपनी रचनाएं इस ग्रंथ में शामिल करवाने हेतु लाए थे। गुरु जी ने उनकी रचनाएं बहुत प्रेम से पढ़ीं, किन्तु गुरु आश्य के प्रतिकूल होने के कारण इन्हें गुरु ग्रंथ साहिब में शामिल करने से उन्होंने इन्कार कर दिया था। अन्य भक्त तो चुप रहे, परंतु भक्त कान्हा बहुत क्रोधित हुआ। कान्हा रिश्ते में चंदू के चाचे का पुत्र होने के नाते भाई लगता था। इसलिए उसने चंदू की सहायता से बादशाह अकबर के पास शिकायत करने हेतु अन्य फकीरों व भक्तों को एकत्र किया। लेकिन वह अभी योजना ही बना रहा था कि उसकी मृत्यु हो गई।

जब ब्राह्मणों को इस बात का पता चला तो उन्होंने यह अफवाह उड़ा दी कि भक्त कान्हा को गुरु अर्जुन देव जी ने मरवाया है। फिर उन्होंने एक शिकायतनामा तैयार किया और उसमें लिखा कि गुरु अर्जुन देव ने एक ग्रंथ तैयार किया है, जिसमें मुसलमानों के पीरों, पैगम्बरों और हिन्दुओं के अवतारों तथा देवी-देवताओं की निन्दा की गई है।

बादशाह अकबर गुरु अमरदास और गुरु रामदास को मिल चुका था, इसलिए उसने इस शिकायतनामे की परवाह न की। किन्तु ब्राह्मणों को हौंसला दे दिया कि जब भी वह पंजाब आएगा तो उनकी शिकायत की पुष्टि करेगा। कुछ समय के पश्चात् जब अकबर बटाले आया तो ब्राह्मणों का एक प्रतिनिधि मण्डल उसे फिर जाकर मिला और अपनी शिकायत का स्मरण करवाया। बादशाह अकबर ने गुरु जी के पास संदेश भेजा कि वह उनके द्वारा रचित ग्रंथ के दर्शन करना चाहते हैं, इसलिए इसे बटाले भेजा जाए।

उस समय तक ग्रंथ साहिब के कई स्वरूप तैयार हो चुके थे। गुरु जी ने ग्रंथ साहिब को एक पालकी में रख कर बाबा बुड्ढा और भाई गुरदास के साथ बटाले भेज दिया। अकबर ने ब्राह्मणों और अन्य शिकायतकर्ताओं को भी अपने पास बुला लिया और भरे दरबार में ग्रंथ साहिब में से शबद पढ़ने हेतु कहा। बाबा बुड्ढा जी ने वाक् लिया तो यह गुरु-वाक् निकला:-

खाक नूर करदं आलम दुनीआइ ॥
असमान जिमी दरखत आब पैदाइसि खुदाइ ॥ १ ॥
बंदे चसम दीदं फनाइ ॥
दुनीआ मुरदार खुरदनी गाफल हवाइ ॥ रहाउ ॥ (पृष्ठ ७२३)

अकबर तो यह वाक् सुन कर बहुत प्रसन्न हुआ, लेकिन शिकायतकर्ता कहने लगे कि इन्होंने पहले ही निशानी रखी हुई थी, इसलिए किसी अन्य पृष्ठ से पढ़ा जाए। दूसरा वाक् यह था:-

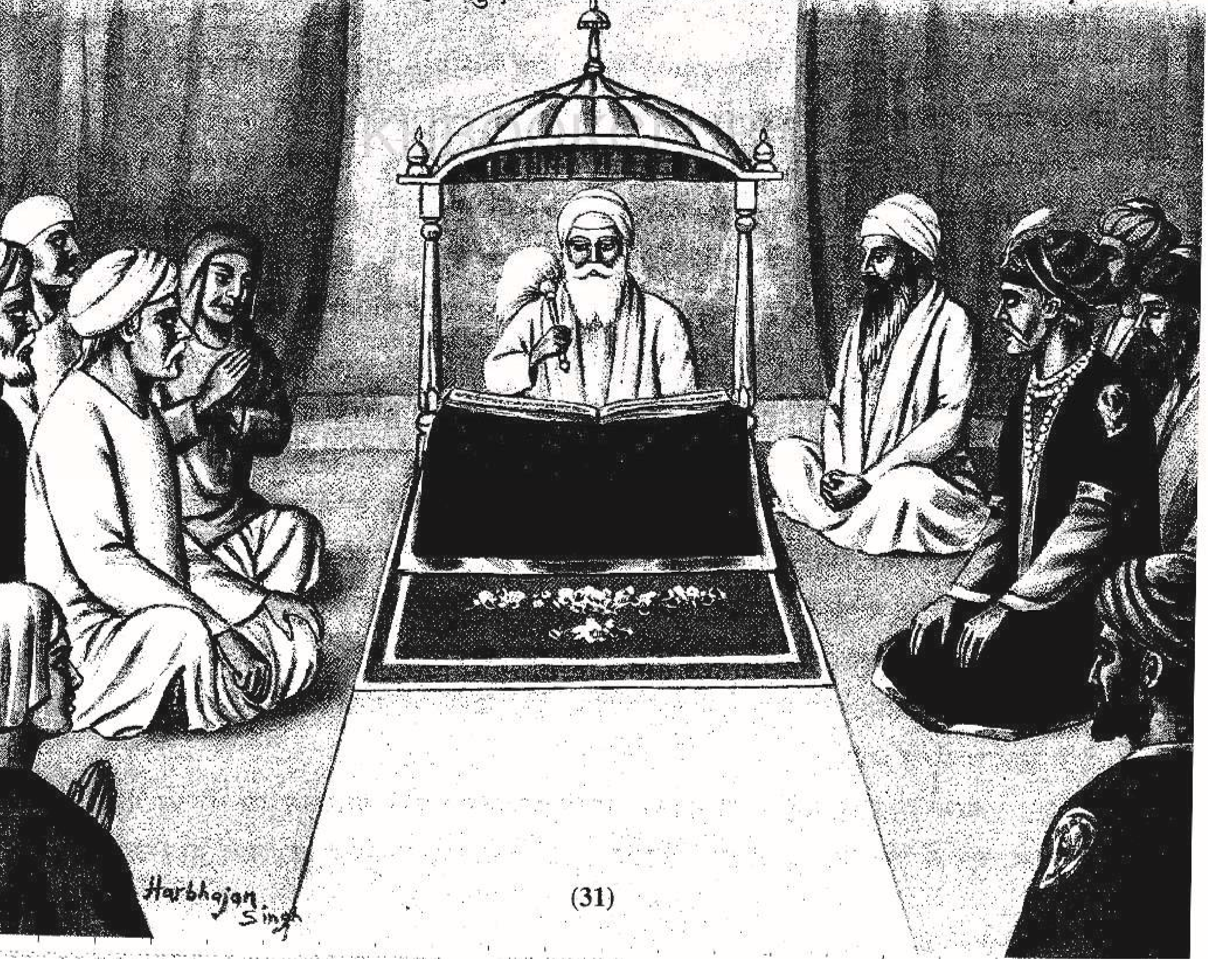
अलह अगम खुदाई बंदे ॥ छोडि खिआल दुनीआ के धंधे ॥
होइ पै खाक फकीर मुसाफरु इहु दरवेसु कबूलु दरा ॥ १ ॥ (पृष्ठ १०८३)

अकबर यह शबद सुन कर कहने लगा, "यह तो ईश्वरीय बाणी है, मुझे तो सुन कर आनंद आ गया है। अब मेरी विनती पर एक और शबद सुनाओ।"

जब बाबा बुड्ढा जी ने तीसरा वाक् लिया तो यह शबद निकला:-

अवलि अलह नूरु उपाइआ कुदरति के सभ बंदे ॥
एक नूर ते सभु जगु उपजिआ कउन भले को मंदे ॥ १ ॥ (पृष्ठ १३४९)

अकबर तीसरा वाक् सुन कर और भी आनंद में आ गया। शिकायतकर्ताओं को डांटते हुए उसने कहा, "इस ग्रंथ की जितनी भी प्रशंसा की जाए, कम है। अल्लाह की बंदगी के बिना मुझे तो इसमें कुछ और नज़र नहीं आया। इसमें किसी मज़हब की निंदा अथवा अपमान नहीं किया गया। इस में तो एक अल्लाह की स्तुति की गई है।" अकबर उसी समय अपने सिंहासन से उठा और ग्रंथ साहिब के समक्ष सौ मुद्राएं भेंट करके शीश झुका कर प्रणाम किया। शिकायतकर्ता शर्मिन्दा होते हुए अकबर के कोप से भयभीत होकर वहां से चले गए।



शहीदी

(गुरु) हरिगोबिंद साहिब का छोटी आयु में ही शरीर बहुत सुडोल था। उनके आकर्षक व्यक्तित्व को देख कर प्रत्येक व्यक्ति मोहित हो जाता था। जब अकबर के एक दीवान चंदू ने कुछ पुरोहितों को अपनी कन्या हेतु वर ढूंढने के लिए कहा तो वे घूमते हुए अमृतसर पहुंच गए। जब वे गुरु जी के दरबार में उपस्थित हुए तो (गुरु) हरिगोबिंद साहिब का नूर देख कर अचम्भित हो उठे। उन्होंने गुरु जी से मिल कर उसी समय रिश्ता पक्का कर लिया।

लेकिन जब चंदू शगुन भेजने लगा तो उसने कहा, "रिश्ता तो मुझे मन्जूर है, किन्तु आप चौबारे की ईंट मोरी में लगा आए हो। यह आप ने अच्छा नहीं किया।"

पुरोहितों के साथ कुछ सिख भी गए थे। जब उन्होंने चंदू के ये अपमानजनक शब्द सुने तो वे क्रोधित हो उठे। उन्होंने पहले ही एक सिख को अमृतसर भेज दिया। वह सिख गुरु जी को मिला और कहा, "चंदू ने स्वयं को चौबारा और गुरु-घर को मोरी कहा है। इसलिए यह रिश्ता प्रवान नहीं करना चाहिए।"

गुरु जी ने भाई गुरदास, बाबा बुड्ढा जी तथा अन्य सिखों को बुला कर सारी बात बताई। सभी सिखों ने एक स्वर में कहा कि यह रिश्ता नहीं लेना चाहिए।

अगले दिन जब शगुन पहुंचा तो गुरु जी ने शगुन लेने से स्पष्ट इन्कार कर दिया। जब चंदू को पुरोहितों ने शगुन लौटा देने की बात बताई तो चंदू बहुत शर्मसार हुआ और उसने एक लाख रुपये गुरु जी को देने के लिए भेजे। लेकिन गुरु जी ने वह रुपये लेने से इन्कार कर दिया और कहा कि यदि चंदू सारी दुनिया की दौलत देना चाहे तो भी यह रिश्ता वे स्वीकार नहीं करेंगे।

चंदू को जब यह अनुभव हुआ कि उसकी लड़की सारी उम्र कुंवारी ही रहेगी तो वह गुरु जी के खिलाफ हो गया और जहांगीर को गुरु जी के विरुद्ध भड़काने लग पड़ा। जहांगीर तो बादशाह बनने से पूर्व ही गुरु जी के विरुद्ध था। वह तो अकबर के जीवन काल में ही गुरु नानक के प्रचार को रोकने का मन बना चुका था। अपनी आत्म-कथा (तुज़िक) में वह लिखता है, "बहुत से भोले-भाले हिन्दुओं और कमीने मुसलमानों को अपने विचारानुसार वश में करके उसने बली होने का ढिंढोरा पिटवाया था। तीन-चार पीढ़ियों से यह दुकान चल रही थी। काफी देर से मेरा दिल कर रहा था कि इस मिथ्या दुकान को बंद कर दूं अथवा उसे इस्लाम में ले आऊं।"

इस प्रकार जहांगीर चंदू वाली घटना घटित होने से पूर्व ही गुरु अर्जुन देव जी को शहीद करने के बारे में मन बना चुका था। वह तो केवल कोई बहाना तलाश कर रहा था। बहाना

भी उसे उसके लड़के खुसरो की बग़ावत से मिल चुका था। खुसरो गुरु अर्जुन देव जी को अपना मुरशद मानता था। जब वह पकड़े जाने के भय से काबुल की ओर भागता हुआ जा रहा था तो मार्ग में वह तरनतारन में रुक गया। वह गुरु अर्जुन देव जी को मिला और लंगर में प्रशाद भी ग्रहण किया।

इस प्रकार बाग़ी खुसरो का गुरु जी को मिलना, गुरु अर्जुन देव जी को शहीद करने हेतु जहांगीर को एक उचित बहाना मिल गया। लाहौर का हाकिम मुर्तज़ा खां तो पहले ही गुरु जी के विरुद्ध रिपोर्टें भेज चुका था। उसने जहांगीर को यह भी लिखा था कि गुरु जी ने खुसरो को आशीर्वाद देकर उसके माथे पर तिलक लगाया था। अपनी आत्म-कथा में जहांगीर लिखता है, "इन दिनों में खुसरो उस मार्ग से गुज़रा। इस पुरुष (गुरु अर्जुन देव जी) ने इरादा किया कि खुसरो को मिले। खुसरो का उस स्थान पर उतारा हुआ जहां उस (गुरु अर्जुन देव) का टिकाना था। उसने आकर उसे देखा और मिला। कई बातें की और



उसके माथे पर अपनी अंगुली से केसर का, जिसे हिन्दू तिलक कहते हैं तथा शगुन समझते हैं, लगाया। जब यह समाचार मेरे कानों तक पहुंचा, मैं उसके झूठ को अच्छी तरह जानता था। मैंने आदेश दिया कि उस (गुरु अर्जुन देव) को उपस्थित किया जाए और उसके घर-बार, बच्चे आदि मुर्तज़ा खां के अधीन कर दिए जाएं। उसका धन-सम्पत्ति जब्त करके आदेश दिया कि उसे कष्ट देकर कत्ल किया जाए।"

जहांगीर को यह बड़ा दुख था कि मुसलमान गुरु अर्जुन देव के सेवक क्यों बन रहे हैं। इसलिए गुरु जी को कत्ल करने की उसने ठान ली। गुरु जी भी समय की नज़ाकत को जानते थे। जहांगीर के विचार भी उन तक पहुंच रहे थे। वह जान गए कि शहीदी का समय निकट आ गया है। इसलिए उन्होंने बाबा बुड्ढा जी, भाई गुरदास जी तथा अन्य अग्रणी सिखों को बुलाया और 15 मई, 1606 ई: को गुरु हरिगोबिंद साहिब को गुरुगद्दी पर सुशोभित कर दिया। उन्होंने गुरु हरिगोबिंद साहिब को उपदेश दिया कि "सिखी का प्रचार हमने शांतमयी ढंग से किया था, किन्तु अब समय बदल गया है। अब अच्छाई और बुराई की जंग होगी। इसलिए आपको अब कमर कस लेनी चाहिए। आप शस्त्र धारण करो और सिखों को शस्त्र धारण करने की आज्ञा दो।"

कुछ दिनों के उपरांत ही मुर्तजा खां ने गुरु जी को अमृतसर से बंदी बना लिया। गुरु जी के साथ पांच सिख स्वयं ही चल पड़े।

लाहौर पहुंच कर गुरु जी को जहांगीर के दरबार में पेश किया गया। जहांगीर ने कई प्रश्न किए, जिनका गुरु जी ने यथोचित उत्तर दिया। उनको यह भी कहा गया कि आदि ग्रंथ में मुहम्मद की स्तुति के कुछ शबद शामिल किए जाएं, लेकिन गुरु जी ने स्पष्ट तौर पर इन्कार कर दिया। फिर उनको मुसलमान बनने हेतु कहा गया। गुरु जी ने कहा कि हम देह-त्याग कर सकते हैं, किन्तु अपना धर्म नहीं छोड़ सकते। जब गुरु जी ने जहांगीर की कोई भी शर्त न मानी तो उसने गुरु जी को कष्ट देकर शहीद करने का आदेश दे दिया।

पहले आषाढ़ माह की तपती रेत में बिठा कर कष्ट दिए गए। जब साईं मियां मीर को इस बात का पता चला तो वह जहांगीर को मिला। लेकिन जहांगीर ने उसकी बात न मानी। फिर गुरु जी को उबलते पानी की देग में बिठाया गया। लेकिन वह शांत-चित्त होकर प्रभु में सुरति जोड़ कर बैठे रहे। फिर उन्हें तपती हुई तवी पर बिठा कर गर्म रेत झुलसे हुए शरीर पर डाली गई। इससे उनका सारा शरीर फफोलों से भर गया।

इस प्रकार पांच दिन तक उन्हें कष्ट दिए जाते रहे। छठे दिन अर्थात 30 मई, 1606 ई: को दरिया रावी के किनारे पर उन्हें ले गए और हाथ-पांव बांध कर रावी दरिया में उन्हें फैंक दिया। इस प्रकार कष्ट देकर गुरु जी को शहीद कर दिया गया।



गुरु हरिगोबिंद साहिब जी

जन्म और विद्या

(गुरु) हरिगोबिंद साहिब का जन्म 9 जून 1595 ई: को अमृतसर से चार मील दूर गांव वडाली में हुआ। गुरु अर्जुन देव जी उस समय माझे में प्रचार हेतु गए हुए थे। जब उन्हें बालक के जन्म का समाचार मिला तो उन्होंने निर्देश भेजा कि बालक का पूर्णतया ध्यान रखा जाए। आप को पता था कि आपका ज्येष्ठ भाई पृथी चंद अवश्य ही कोई षड़यंत्र रच कर बालक को मारने का यत्न करेगा। उनका कथन भी सत्य ही निकला। पृथी चंद ने बालक को समाप्त करने के लिए कई षड़यंत्र रचे, किन्तु बालक का बाल भी बांका न हुआ।

कुछ समय वडाली में रुक कर गुरु जी फिर अपने परिवार को अमृतसर ले गए। अमृतसर जाकर श्री हरिगोबिंद साहिब की पढ़ाई और सिखलाई का पूर्ण प्रबंध किया गया। बाबा बुड्ढा जी को अमृतसर बुलाया गया और उनके संरक्षण में (गुरु) हरिगोबिंद को अक्षर-विद्या, हिकमत और शस्त्र विद्या ग्रहण करवाई गई। इस विद्या के साथ-साथ भाई जेठा जी ने, जो युद्ध-विद्या में निपुण थे, नेज़ेबाजी, तीरंदाज़ी, निशानेबाज़ी, तलवार और बंदूक चलाने की शिक्षा दी। भाई गंगा सहगल ने उन्हें घुड़सवारी में परिपक्व किया। (गुरु) हरिगोबिंद साहिब का शरीर बहुत सौष्ठव था और आप अल्पायु में ही पहलवानी किया करते थे तथा स्वयं से बड़ी आयु वाले पहलवानों को पराजित कर दिया करते थे।

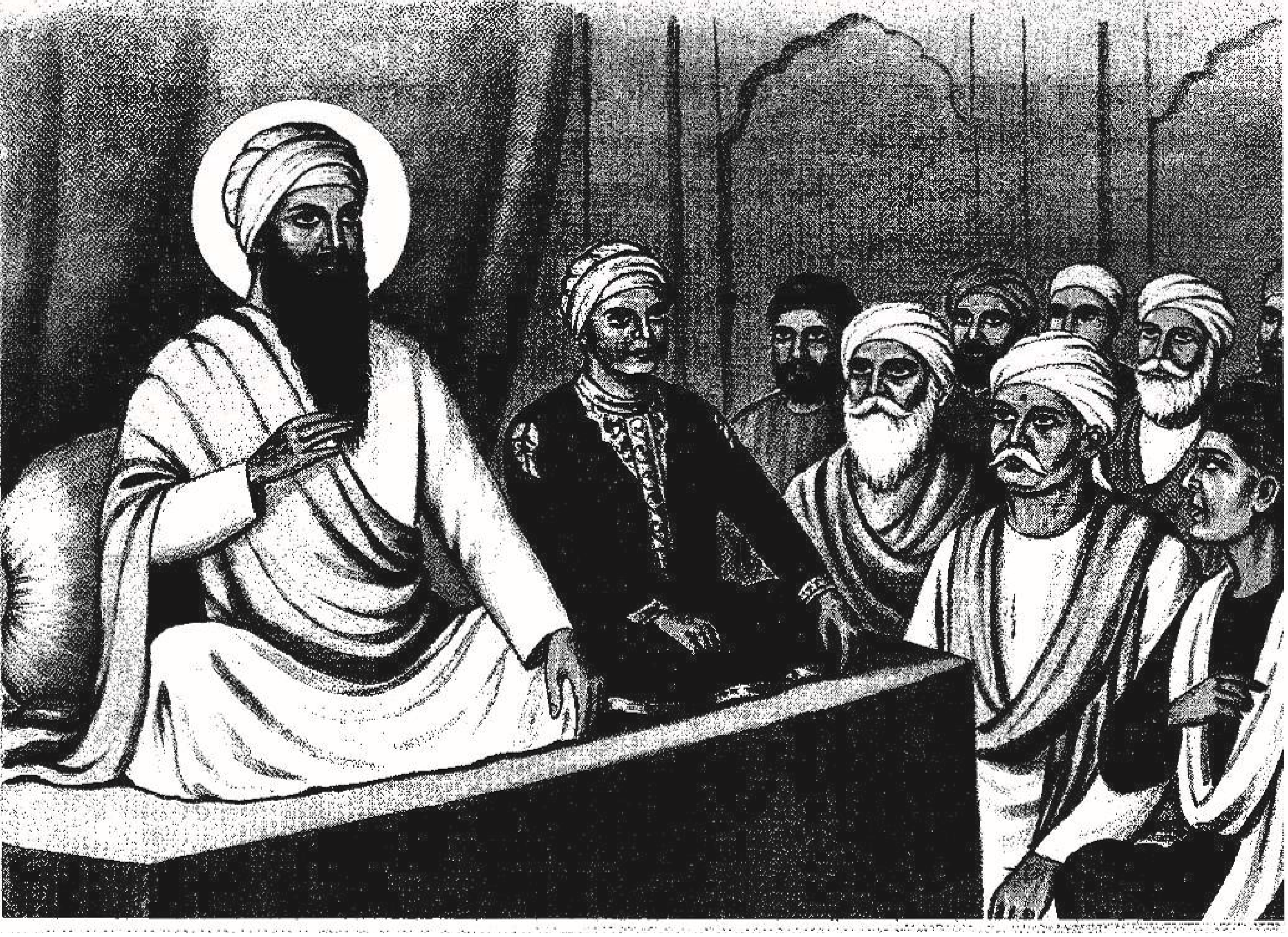
चूंकि बाबा पृथी चंद ने बालक (गुरु) हरिगोबिंद को मारने हेतु कई षड़यंत्र रचे थे, इसलिए अमृतसर के लोग उसके विरुद्ध हो गए थे और उसका जीना मुश्किल कर दिया। दुखी होकर वह अमृतसर छोड़ कर अपने ससुराल गांव हेहर चला गया। वहां जाकर उसने अपना अलग हरिमंदिर बनाया, लेकिन लोगों ने उसे मुंह न लगाया।

शस्त्र विद्या के साथ-साथ (गुरु) हरिगोबिंद साहिब गुरुबाणी का गहन अध्ययन कर रहे थे। अल्पायु में ही उन्होंने पर्याप्त बाणी कण्ठ कर ली थी। यही कारण था कि गुरु बनने के पश्चात् जब वे कथा किया करते थे तो गुरुबाणी के अनेकों उदाहरण दिया करते थे। अल्पायु में ही आप आकर्षक व्यक्तित्व के मालिक हुए। आप का शरीर सौष्ठव और नयन-नक्श तीक्ष्ण था।

भाई संतोख सिंघ के शब्दों में, "(गुरु) हरिगोबिंद के पैर कंवल के समान लाल छैल-छबीले थे। उनके हाथों-पांवों के नाखून हीरों की लड़ी की भांति आनंद देने वाले थे। उनकी टांगें सुपारी के बूटे की भांति अति सुन्दर और घुटनों व गीटे की गाठें गठीली व बड़ी थीं। उनकी छाती चौड़ी तथा कंधे ऊंचे थे। उनके बाजू सख्त, बलवान और हाथी की सूंड के समान लचीले थे। उनके दोनों हाथ कमल और ऊंगलियां पंखुड़ियों के समान थे। उनका मुख-मण्डल

चंद्रमा के समान था। उनके दांत सफेद और होंठ सुरख लाल थे। उनके नयन कमल की पंखुड़ियों के समान तीखे थे, जोकि दृष्टि मात्र से ही संगतों को आनंदित कर देते थे। उनकी ठोडी और दोनों कपोल कोमल, नर्म और गोल थे। जिस पर लटक रहे कुण्डल शोभा बरसा रहे थे।"

उनकी ऐसी सुन्दरता देख कर दस वर्ष की आयु में ही उनके लिए रिश्ते आने शुरू हो गए थे। चन्दू, जो दिल्ली के बादशाह का दीवान लगा हुआ था, उसने अपनी कन्या हेतु अपने पुरोहितों को वर ढूंढने के लिए भेजा। गुरु अर्जुन देव जी की शोभा सुन कर वे गुरु साहिब के दरबार में पहुंचे। (गुरु) हरिगोबिंद साहिब का नूर देख कर वे वहीं पर स्थिर हो गए। चन्दू की कन्या हेतु वे वहां पर संबंध जोड़ गए। लेकिन चन्दू जब शगुन भेजने लगा तो उसने कहा, "पुरोहित जी! आप ने अच्छा नहीं किया, चौबारे की ईंट मोरी में लगा आए हो।" लेकिन जब सिखों ने यह सुना तो उन्होंने गुरु जी को चन्दू की कही हुई बात बता दी और चन्दू द्वारा भेजा गया शगुन लौटा दिया। तदुपरांत चन्दू ने बहुत यत्न किए, लेकिन गुरु जी इसके लिए सहमत न हुए। इस प्रकार चन्दू गुरु-घर के साथ वैर कर बैठा।



मीरी पीरी की दो तलवारें धारण करना

जहांगीर के लड़के खुसरो ने बगावत कर दी थी। काबुल की ओर भागता हुआ जब वह तरनतारन में गुरु अर्जुन देव जी को मिला तो इस की रिपोर्ट जहांगीर के पास पहुंच गई। जहांगीर तो पहले ही गुरु-घर के विरुद्ध था। इसलिए उसने गुरु अर्जुन देव जी को लाहौर में बुला लिया। 22 मई 1606 ई: को अमृतसर से लाहौर चलने से पहले गुरु अर्जुन देव जी ने गुरुगद्दी का दायित्व गुरु हरिगोबिंद साहिब को सौंप दिया। जाते हुए उन्होंने कहा, "शस्त्र सजाओ और अपने सिखों को शस्त्रधारी बनाओ। इन ज़ालिमों का अब फकीर बन कर सामना नहीं हो सकता।"

उस समय गुरु जी की आयु मात्र ग्यारह वर्ष की थी। बेशक उम्र में वे छोटे थे, किन्तु अक्ल, हिम्मत, उदारता, भक्ति और शक्ति में बहुत बड़े थे। गुरुगद्दी के समय जब बाबा बुड्ढा जी ने एक तलवार पहनाई तो वह गलत ओर पड़ गई। जब बाबा बुड्ढा जी उस को उतारने लगे तो गुरु जी ने कहा, दूसरी तलवार लाओ। दूसरी तलवार उन्होंने दूसरी ओर पहन ली। उन्होंने कहा, अब वे दो तलवारें पहना करेंगे। एक तलवार मीरी की है और दूसरी पीरी की।

उन्होंने दसतार भी राजाओं-महाराजाओं की तरह ही सजाई और उस पर कलगी लगाई। उस समय गुरु जी का तेज़ सूर्य के समान चमक रहा था। गुरुगद्दी पर बैठने के उपरांत उन्होंने फुरमाया, "आज के बाद मेरे पास उपहार अच्छा शस्त्र और अच्छा घोड़ा हुआ करेगा। सभी सिख शस्त्रधारी बनो। व्यायाम करो, गतका खेलो, जंगल में जाओ और शिकार खेलो। मुझे आज से सबसे अधिक सिख शूरवीरों की आवश्यकता है। जो भी सिख बनना चाहता है, वह हमारी सेना में भर्ती हो जाए, यहां पर उसे हर तरह के शस्त्र चलाने की शिक्षा प्रदान की जाएगी।"

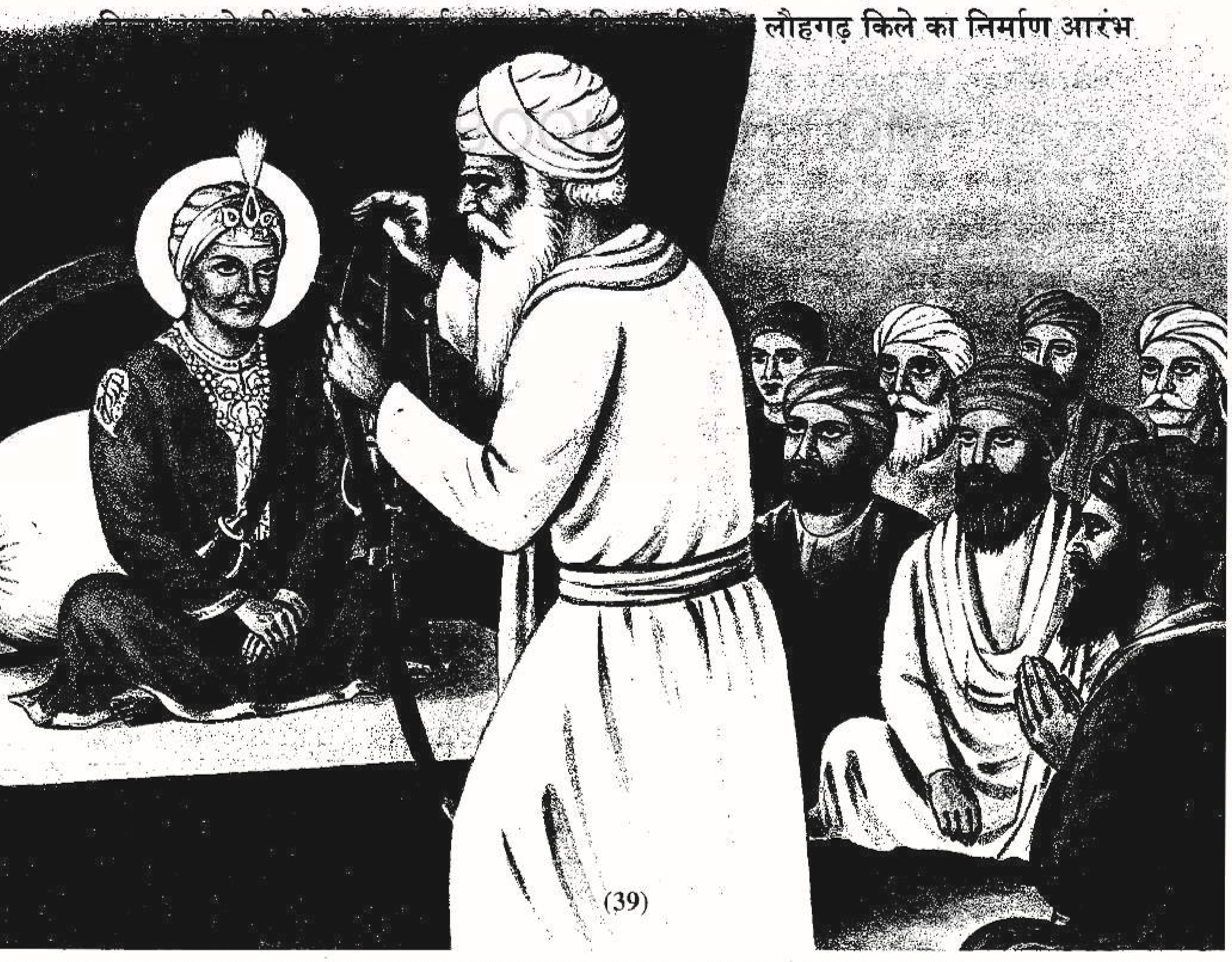
गुरु जी का यह फुरमान मान कर सिख उन्हें शस्त्र और घोड़े अर्पित करने लगे। सैकड़ों शूरवीर सिख गुरु जी की सेना में भर्ती होने के लिए उनके पास आने लगे। गुरु जी ने उन्हें स्पष्ट किया कि उन्हें लंगर में से दोनों प्रहर प्रशादा मिलेगा और छः मास बाद पहनने हेतु नए वस्त्र मिलेंगे। सिखों को और क्या चाहिए था। वे दोनों प्रहर कीर्तन सुनते और दिन में शस्त्र चलाने का अभ्यास करते, व्यायाम करते तथा दिन-ब-दिन उनका शरीर सौष्ठव होने लगा। उन्हें किसी का भी भय नहीं था। उनका गुरु उनके साथ था। गुरु जी भी उनके साथ शिकार करने जाया करते थे। गुरु जी ने बावन सर्वश्रेष्ठ शूरवीर सिख अपने अंगरक्षक के तौर पर नियुक्त किए।

जब कुछ पठानों को मुगल सेना में से निकाल दिया गया तो वह गुरु जी के पास आए। गुरु जी ने उन सब को अपने पास नौकर रख लिया। अपने निर्णय स्वयं करने के लिए उन्होंने हरिमंदिर साहिब के सामने अकाल तख्त का निर्माण किया। वहां पर सर्वप्रथम जत्थेदार प्रबंधक भाई गुरदास जी को नियुक्त किया गया। गुरु जी ने कहा, "यह कोई साधारण तख्त नहीं होगा। यहां पर बैठ कर कोई पक्षपात नहीं करेगा, बल्कि पूर्णतया न्याय किया जाएगा। इस तख्त पर बैठ कर सारा प्रबंध किया जाएगा।"

जब गुरु साहिब स्वयं तख्त पर बैठे तो उन्होंने केसरी वस्त्र पहने और सुन्दर दसतार और कलगी सजाई। उन्होंने यह भी आदेश दिया कि आगे से सोदर की चौकी के पश्चात् शूरवीर योद्धाओं की वारें गाई जाएंगी, ताकि सिखों में से कायरता निकाल कर साहस भरा जाए।

सिखों में जो भी विवाद उत्पन्न होते थे, उनके निर्णय अकाल तख्त पर बैठ कर होते थे। गुरु साहिब दोनों पक्षों को सुन कर तुरंत ही निर्णय कर देते थे। उनके द्वारा किए गए निर्णय को दोनों पक्षों को मानना ही पड़ता था।

जब सेना की संख्या अत्यधिक बढ़ गई तो गुरु जी ने अमृतसर शहर की रक्षा के लिए एक [illegible] लौहगढ़ किले का निर्माण आरंभ



बंदी-छोड़

जब लाहौर के नवाब मुर्तजा खान ने यह देखा कि गुरु जी ने किला बना लिया है और सेना में अत्यधिक वृद्धि कर ली है तो उसने जहांगीर को सुचेत किया कि गुरु हरिगोबिंद अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिए सैनिक बल में वृद्धि कर रहा है। जहांगीर भी भयभीत हो गया कि सिख कहीं पंजाब पर कब्जा ही न कर लें। इसलिए उसने वजीर खां और गुंचा बेग को गुरु जी को लाने हेतु अमृतसर भेजा।

वजीर खां ने गुरु जी को बताया कि जहांगीर केवल आप को मिलना चाहता है। गुरु जी उसके साथ चलने के लिए तैयार हो गए। जब वे जहांगीर के समक्ष उपस्थित हुए तो जहांगीर ने कहा, "मैं बीमार रहता हूं, आप इलाही फकीर हो, इसलिए आप एक मास ग्वालियर में रह कर मेरे स्वस्थ होने के लिए इबादत करें।"

गुरु जी समझते थे कि यह सब एक चाल थी। उन्हें ग्वालियर जेल में भेज दिया गया। वहां पर पहले ही कई राजा कैद किए हुए थे। गुरु जी ने कैदखाने में जाकर भी जंगल में मंगल कर दिया। वे दोनों प्रहर कीर्तन करते और बाणी पढ़ते, फिर सभी राजाओं को चढ़ती कला में रहने का उपदेश देते। जेल का दरोगा हरदास भी उनका उपासक बन गया। एक बार चन्दू ने गुरु जी को मारने के लिए एक विषैली पोशाक भेजी। दरोगे ने वह गुरु जी को न दी, लेकिन चन्दू की चाल के बारे में गुरु जी को बता दिया और आगे से सुचेत रहने के लिए कह दिया।

जब काफी समय तक गुरु जी वापस न आए तो गुरु परिवार और सिख संगत बहुत उदास हो गए। गुरु को मिलने की जिज्ञासा इतनी बढ़ गई कि सिख ग्वालियर आते और किले की दीवारों को माथा टेक कर किले की परिक्रमा करके लौट जाते।

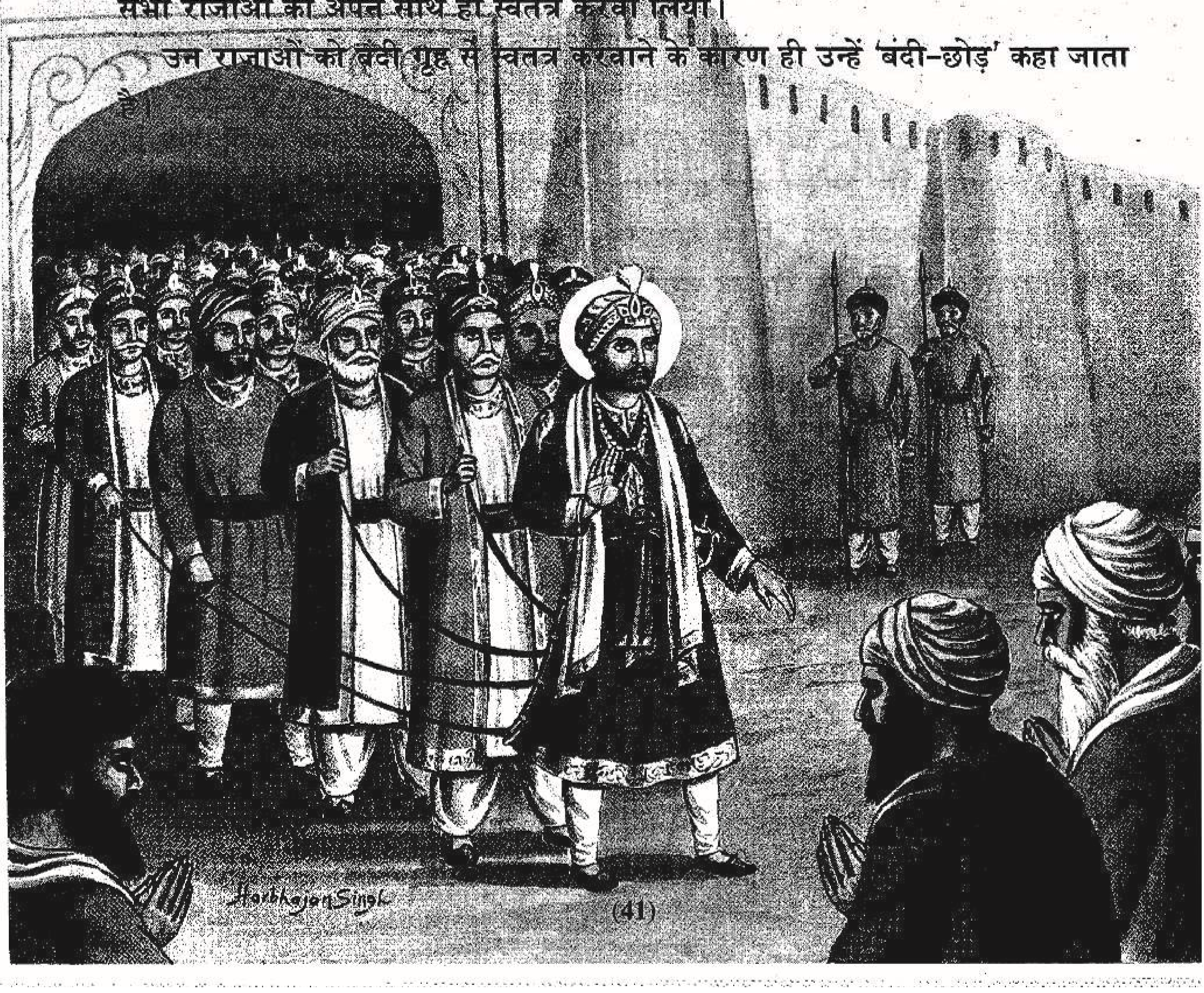
लाहौर वाले साईं मियां मीर गुरु-घर के बहुत श्रद्धालु थे। उन्होंने अपनी आंखों से गुरु अर्जुन देव जी को कष्ट सहते हुए शहीदी प्राप्त करते देखा था। जब उन्हें गुरु हरिगोबिंद के कैद होने के बारे में पता चला तो उनसे रहा न गया और वह दिल्ली पहुंच गए। वहां दिल्ली के कई नामवर सूफी फकीरों को मिले।

वहां जाकर उन्हें पता चला कि जहांगीर ने नूरजहां से विवाह करवा लिया था। नूरजहां लाहौर की रहने वाली थी और साईं मियां मीर की उपासक थी। साईं मियां मीर नूरजहां को जा मिले। उन दिनों में जहांगीर बहुत बीमार था और बड़े से बड़े वैद्यों के उपचार से भी स्वस्थ नहीं हो पा रहा था। बादशाह जहांगीर भी मियां मीर को मिल कर बहुत प्रसन्न हुआ और कहने लगा, "आप अल्लाह के वली हो, मेरी सेहत के लिए दुआ करो।" साईं मियां मीर

ने कहा, "आप ने एक ईश्वरीय ज्योति को कष्ट देकर मरवा दिया है और उनके परमात्मा रूपी पुत्र को कैद में रखा हुआ है। जब तक आप उनको कारागार से मुक्त नहीं करते, स्वस्थ होने का ख्याल त्याग दो।" जहांगीर के मन में भी उसकी बात बैठ गई। उसे बहुत पश्चाताप हुआ कि उसने एक निर्दोष फकीर को कत्ल करवाया तथा उसके पुत्र को कारागार में बंदी बनाया है।

उसने उसी समय एक शाही फुरमान जारी किया कि गुरु हरिगोबिंद को इसी समय रिहा कर दिया जाए। लेकिन जब वजीर खां यह आदेश लेकर ग्वालियर पहुंचा तो शेष राजा बहुत उदास हो गए। उन्होंने गुरु जी के समक्ष निवेदन किया कि उन्हें भी रिहा करवाया जाए। गुरु जी ने वजीर खां को कहा कि वह तब तक कारागार से बाहर नहीं जाएंगे, जब तक शेष सभी कैदियों को रिहा नहीं किया जाता। जहांगीर ने पुनः आदेश भेजा कि जितने राजा गुरु साहिब का आंचल पकड़ कर बाहर निकल सकते हैं, उन्हें बंदी गृह से मुक्त कर दिया जाए। यह सुन कर गुरु जी ने 52 शृंखलाओं वाली एक पोशाक तैयार करवाई और सभी राजाओं को अपने साथ ही स्वतंत्र करवा लिया।

उन राजाओं को बंदी गृह से स्वतंत्र करवाने के कारण ही उन्हें 'बंदी-छोड़' कहा जाता है।



जहांगीर का पश्चाताप

जहांगीर ने नवाब वजीर खां को यह आदेश किया था कि गुरु जी को रिहा करके अपने साथ दिल्ली ले आए। जहांगीर को यह पश्चाताप था कि उसने एक निर्दोष फकीर गुरु अर्जुन देव को कष्ट देकर शहीद करवाया था। वह अपने इस दोष को चन्दू व अन्य हाकिमों के सिर पर थोपना चाहता था। इसलिए गुरु हरिगोबिंद को मिल कर वह स्वयं को दोष-मुक्त करना चाहता था। गुरु जी को उसने बुलाया और अपने पास बड़े सम्मान के साथ बिठाया। बादशाह जहांगीर ने कहा, "मुझे मिथ्या समाचार दिया गया था कि आप अपने पिता की मृत्यु का बदला लेना चाहते हो, इसलिए आप सैनिक बल में वृद्धि कर रहे हो, किन्तु अब मेरी शंका निवृत्त हो गई है। आपका दोषी तो चन्दू है, मैंने उसे तथा उसके परिवार को बंदी बना लिया है। उन्हें आपके अधीन कर दिया जाएगा।" लेकिन गुरु जी जानते थे कि वास्तव में दोषी कौन है, वह जहांगीर को निर्दोष नहीं समझते थे।

जहांगीर बादशाह अब चाहता था कि गुरु जी के साथ अब अच्छे संबंध बनाए जाएं। इसलिए उसने गुरु साहिब को कुछ दिन अपने पास ठहरने हेतु विनती की। गुरु जी मजनूं के टिल्ले में ठहर गए। अब जहांगीर व गुरु साहिब इकट्ठे शिकार को जाया करते। एक दिन बहुत ही भयानक शेर उनके सामने आ गया। जहांगीर ने कहा कि कोई ऐसा शूरवीर है, जो इस शेर का सामना कर सके, लेकिन जहांगीर का कोई भी शूरवीर उस शेर का सामना करने को तैयार न हुआ। तब गुरु जी कूद कर शेर के सामने हो गए। जब शेर गरजता हुआ उन पर झपटा तो गुरु जी ने अपनी ढाल उस शेर के मुंह पर इतनी ज़ोर से मारी कि वह शेर लुढ़कता हुआ दूर जा गिरा। फिर उन्होंने तलवार के एक वार से शेर के दो टुकड़े कर दिए। जहांगीर यह दृश्य देख कर चकित हो गया। उसने ऐसा शूरवीर आज तक नहीं देखा था। वास्तव में तो वह सोच रहा था कि जब गुरु जी शेर के साथ मुकाबला करेंगे तो वह शेर के हाथों मारे जाएंगे, किन्तु शेर उन्हें खरोंच तक न लगा सका।

शिकार खेलने के साथ-साथ कई बार तीरंदाज़ी के मुकाबले भी होते थे। यमुना नदी में तुम्बे (कद्दू जाति का फल) फेंके जाते तथा उन तुम्बों को तीर मारे जाते। गुरु जी का प्रत्येक तीर निशाने पर लगता। बादशाह उनकी तीरंदाज़ी देख कर बहुत हैरान हुआ।

दिल्ली में एक घास खोदने वाला रहता था। वह गुरु-घर का बहुत श्रद्धालु था और गुरु जी के दर्शन करना चाहता था। लेकिन वह दिल्ली में गुरु जी के दर्शन न कर सका। एक दिन उसे पता चला कि गुरु जी शिकार खेलने गए हैं। वह भी बड़े प्रेम से घास खोदता हुआ जंगल की ओर चल पड़ा। जंगल में जाकर उसने देखा कि दो अलग-अलग तम्बू लगे हुए हैं। उसे

पता नहीं था कि गुरु जी किस तम्बू में आराम कर रहे हैं। गल्ती से वह जहांगीर के कैम्प में चला गया। प्रहरियों ने पहले तो उसे रोका, लेकिन बाद में कोई फरियादी समझ कर उसे जाने दिया। बादशाह के तम्बू के निकट जाकर उसने घास की गठरी को नीचे रखा और एक टका जहांगीर के सामने रख कर माथा टेका। फिर कहने लगा, "सच्चे पातशाह! मेरी इस दुनिया में और अगली दुनिया में सहायता करना। अंत काल में मुझे सिर्फ आप का ही आश्रय है।" जहांगीर कहने लगा, "तुझे कोई जागीर चाहिए तो वह मैं तुझे दे सकता हूं, लेकिन अंत काल में मैं तुम्हारी कोई सहायता नहीं कर सकता।" यह बात सुन कर वह व्यक्ति समझ गया कि वह किसी गलत जगह पर आ गया है। उसने अपना टका और घास की गठरी उठाई और दूसरे कैम्प में चला गया। उसने जब गुरु जी को देखा तो वह उनके चरणों में गिर पड़ा और विनती करने लगा, "मेरे सच्चे पातशाह! मैं गलत जगह पर चला गया था, मुझ पर कृपा करो।" गुरु जी ने बहुत प्यार के साथ उसका सम्मान किया और एक वाहिगुरु का नाम सच्चे मन से जपने का आदेश दिया। वह व्यक्ति बहुत प्रसन्न हुआ और गुरु जी को आशीष देता हुआ चला गया। जहांगीर यह दृश्य देख कर बहुत प्रभावित हुआ और उसकी दृष्टि में गुरु जी के लिए सम्मान और बढ़ गया।



अमृतसर वापसी

गुरु जी जब पंजाब की ओर प्रस्थान करने लगे तो बादशाह ने चंदू और उसका परिवार गुरु जी को सौंप दिया। गुरु जी ने चंदू के परिवार को छोड़ देने का आदेश दिया। वह चंदू को भी छोड़ देना चाहते थे, लेकिन सिख अपनी जिद पर अटल रहे कि चन्दू को वह अवश्य ही अपने साथ लेकर जाएंगे। सिखों के कोप को देख कर उन्होंने चंदू को भाई बिधी चंद व भाई जेठा जी के सुपुर्द कर दिया।

गुरु जी जब अमृतसर पहुंचे तो हर्षोल्लास के साथ उनका अभिनन्दन किया गया। दीवाली वाली रात को हरिमंदिर साहिब में दीपमाला की गई और आतिशबाजी छोड़ी गई। बड़ी दूर-दूर से सिख संगत गुरु जी के दर्शनार्थ आई।

कुछ समय अमृतसर में ठहरने के पश्चात् गुरु जी साईं मियां मीर को मिलने हेतु लाहौर चले गए। वहां उन्हें मिलने के लिए सभी पीर-फकीर आए। जहां गुरु अर्जुन देव जी को शहीद किया गया था, वहां एक स्मृति स्मारक बनाने का उन्होंने सिख संगत को आदेश किया। जब गुरु जी लाहौर शहर में प्रचार कर रहे थे तो भाई बिधी चंद और भाई जेठा जी चंदू को भी लाहौर ले गए।

जब लाहौर के लोगों ने चंदू को देखा तो वह भड़क उठे। जो भी उसे देखता तो उसके सिर में एक जूती मार देता। इस तरह चंदू को बहुत अपमानित किया गया। दुकान-दुकान उससे कौड़ियां मंगवाई गईं। इस तरह गली-कूचे से होते हुए जब वह उस व्यक्ति के पास पहुंचे, जिससे चंदू ने गुरु जी पर गर्म रेत डलवाई थी तो वह भी क्रोध में आ गया। उसने गर्म-गर्म रेत चंदू के सिर में डाल दी। चंदू चिल्ला उठा और ज़ोर-ज़ोर से चीखने लगा। तब उस व्यक्ति ने कहा, जब यही रेत सतिगुरु के सिर में डलवाई थी तो उन्होंने ऊफ तक नहीं की थी और तुम चिल्ला रहे हो। तुझे अब शर्म नहीं आती। फिर उसने क्रोध में आकर रेत वाला कड़छा ज़ोर से चंदू के सिर पर मारा तो चंदू के वहीं पर प्राण निकल गए। वह धरती पर गिर पड़ा। उसकी लाश को फिर दरिया के किनारे कुत्तों के खाने हेतु फैंक दिया।

कुछ समय लाहौर में ठहर कर गुरु जी फिर अमृतसर आ गए। बादशाह जहांगीर के साथ मित्रता हो जाने के कारण अब गुरु जी को कोई भय नहीं था। लेकिन वह अपनी सैनिक शक्ति को और दृढ़ करना चाहते थे, क्योंकि बादशाह कभी भी किसी के मित्र नहीं होते। जो अपने भाई व पुत्र को मरवा सकते हैं तो दूसरा कोई उनका क्या लगता है?

इसलिए उन्होंने अमृतसर के इर्द-गिर्द एक पक्की दीवार बनवाई। लौहगढ़ किले को पुनः पक्का किया गया। कुछ समय अमृतसर ठहर कर गुरु जी ने यह निश्चय किया कि माझे की

ओर गांवों में जाकर प्रचार किया जाए। एक दिन वह गांव चब्बे की ओर जा रहे थे कि एक माई जिसका नाम सुलखणी था, गुरु जी के घोड़े को घेर कर खड़ी हो गई।

माता सुलखणी चब्बे गांव की रहने वाली थी और उसके घर कोई संतान नहीं थी। वह कई साधु-संतों व पीरों-फकीरों के पास जा चुकी थी, लेकिन उसकी मनोकामना पूर्ण नहीं हो रही थी।

जब उसे लोगों ने बताया कि मीरी-पीरी के स्वामी सतिगुरु हरिगोबिंद साहिब स्वयं इस गांव में आ रहे हैं तो वह कलम-दवात लेकर रास्ते में आ खड़ी हुई।

गुरु जी का घोड़ा रोक कर वह कहने लगी, "इस दीन-दुनिया के मालिक! मैं इस संसार में निःसंतान ही जीवन निर्वाह कर रही हूं। आपके दर से कोई खाली नहीं गया, मुझ अधीर को एक पुत्र की दात प्रदान करो।" गुरु जी ने कहा, "तुम्हारे भाग्य में पुत्र की दात नहीं लिखी है।" माई सुलखणी बड़े विश्वास के साथ कहने लगी, "वहां भी भाग्य के लेख आप ने ही लिखने हैं, यहां भी आप ने ही लिखने हैं।" उसने गुरु जी को कलम-दवात पकड़ाई और अपना हाथ लेख लिखने हेतु गुरु जी के आगे कर दिया। जब गुरु जी उसके हाथ पर १ लिखने लगे तो घोड़े ने पांव हिला दिया तो १ के स्थान पर ७ लिखा गया। इतिहास साक्षी है कि उस माई के घर में सात पुत्र पैदा हुए और वह गुरु-घर की बहुत सेवा करते रहे।



पैंदे खां

कुछ समय माझे में सिखी का प्रचार करने के पश्चात् गुरु जी दोआबे में चले गए। करतारपुर नगर, गुरु अर्जुन देव जी पहले ही बसा चुके थे। गुरु जी ने करतारपुर में जाकर अपना डेरा लगाया। दोआबे की संगत को जब पता चला तो वह हर्षोल्लास के साथ दर्शनों को आने लगी। गुरु जी करतारपुर में ही ठहरे हुए थे, जब इस्माईल खां की अगुवाई में कुछ पठान गुरु जी के पास नौकरी करने के लिए आए। ये कुल छबीस पठान थे और गुरु जी ने इन के साथ अलग-अलग मुलाकात करके उन्हें अपनी सेना में भर्ती कर लिया।

इन पठानों में एक गिल्ज़ी युवक था। वह बहुत ही खूबसूरत और सौष्ठव शरीर वाला था। वह अपनी विधवा मां के साथ गुरु जी के दर्शनों को आया। गुरु जी ने उसके हृष्ट-पुष्ट शरीर को देख कर उसे अपने पास रख लिया। उसकी मां के नाम गुरु जी ने कुछ जागीर लगवा दी तथा उसके रहने के लिए एक मकान बनवा दिया। इस नवयुवक का नाम पैंदे खां था।

गुरु जी ने पैंदे खां के पालन-पोषण का दायित्व स्वयं सम्भाला। उसके लिए विशेष तौर पर दो भैंसों का दूध रखा जाता था। बादाम आदि मेवे वह जितने भी खा सकता था उसका कोई हिसाब नहीं रखा जाता था।

उसे युद्ध कौशल में निपुण करने हेतु महान योद्धा इस्माईल खां को दायित्व सौंपा गया। गुरु जी को जब समय मिलता, तब वे भी पैंदे खां को युद्ध-विद्या के गुण समझाते थे। कुछ समय के पश्चात् ही पैंदे खां एक शूरवीर योद्धा तथा महान पहलवान बन गया। उसकी क्रीड़ा ही ऐसी होती थी कि देखने वाले चकित हो जाते थे।

उसके हाथों में इतना बल होता था कि वह चांदी के सिक्के पर अंकित अक्षर अंगूठे की रगड़ के साथ मिटा देता था। एक हाथ में पकड़ कर वह सिक्के को दोहरा भी कर देता था। वह भैंस या बैल की टांगें बांध कर उसे अपने कन्धों पर उठा लेता था। सबसे विचित्र खेल उसकी यह थी कि घुड़सवार कितनी भी तेज़ी से घोड़ा भगाता हुआ आता हो, वह घोड़े को रोक कर घोड़े व उस पर सवार व्यक्ति को उल्टा कर फैंक देता था। उसकी वीरता और उसके विचित्र खेल को देखने के लिए लोग बड़े चाव से आया करते थे।

उसकी वीरता का उस समय पता चला, जब सिखों की प्रथम लड़ाई में उसने लौहगढ़ के किले में से निकल कर मुगल सैनिकों को रौंदते हुए मुखलिस खां के साथी दीदार अली को एक ही झपटे में समाप्त कर दिया। उसके सामने मुगल सेना भेड़ों की तरह भाग उठी।

इस जंग में वीरता दिखाने पर गुरु जी ने उसकी बहुत प्रशंसा की, लेकिन इस प्रशंसा का

उस पर विपरीत प्रभाव पड़ा। वह इतना अभिमानी हो गया कि वह समझने लगा कि गुरु जी को विजय उसके कारण ही प्राप्त हुई है।

चौथी जंग, जो करतारपुर में हुई थी, उस में वह गुरु साहिब के विरुद्ध लड़ा था। गुरु जी के अहसान को वह भूल गया था तथा एक मामूली बाज़ के लिए वह गुरु जी के विरुद्ध लड़ने को तैयार हो गया। स्वयं को वह कितना भी शूरवीर समझता था, किन्तु अकेला वह गुरु जी का सामना करने से डरता था। इसलिए वह लाहौर के सूबेदार को मिला, जिसने काले खां को एक विशाल सेना देकर गुरु जी पर आक्रमण करने के लिए भेजा था। इस युद्ध में काले खां मारा गया था।

पैंदे खां अपनी वीरता के अभिमान के कारण गुरु जी के साथ युद्ध करने के लिए उनके समक्ष आ गया। गुरु जी ने उसे कहा, "पैंदे खां! पहल तुम्हारी है, वार तुम करो।" पैंदे खां ने पूर्ण शक्ति के साथ वार किया। गुरु जी ने उसके वार को सहजता से ही रोक लिया। गुरु जी ने उसे फिर वार करने के लिए कहा। इस तरह पैंदे खां ने तीन वार किए, जो गुरु जी ने रोक लिए। तदुपरांत गुरु जी ने एक ऐसा वार किया कि वह घोड़े पर से गिर पड़ा। गुरु जी ने अपने घोड़े पर से उतर कर उसे दूसरी दुनिया में पहुंचा दिया। इस तरह अभिमानी पैंदे खां का अंत हो गया।



माता कौलां

बीबी कौलां लाहौर निवासी रुस्तम खां नामक एक काज़ी की लड़की थी। वह समझदार और पढ़ने में बहुत होशियार थी। जब उसने प्रारम्भिक विद्या ग्रहण कर ली तो उच्च शिक्षा हेतु काज़ी ने उसे साईं मियां मीर के पास भेज दिया।

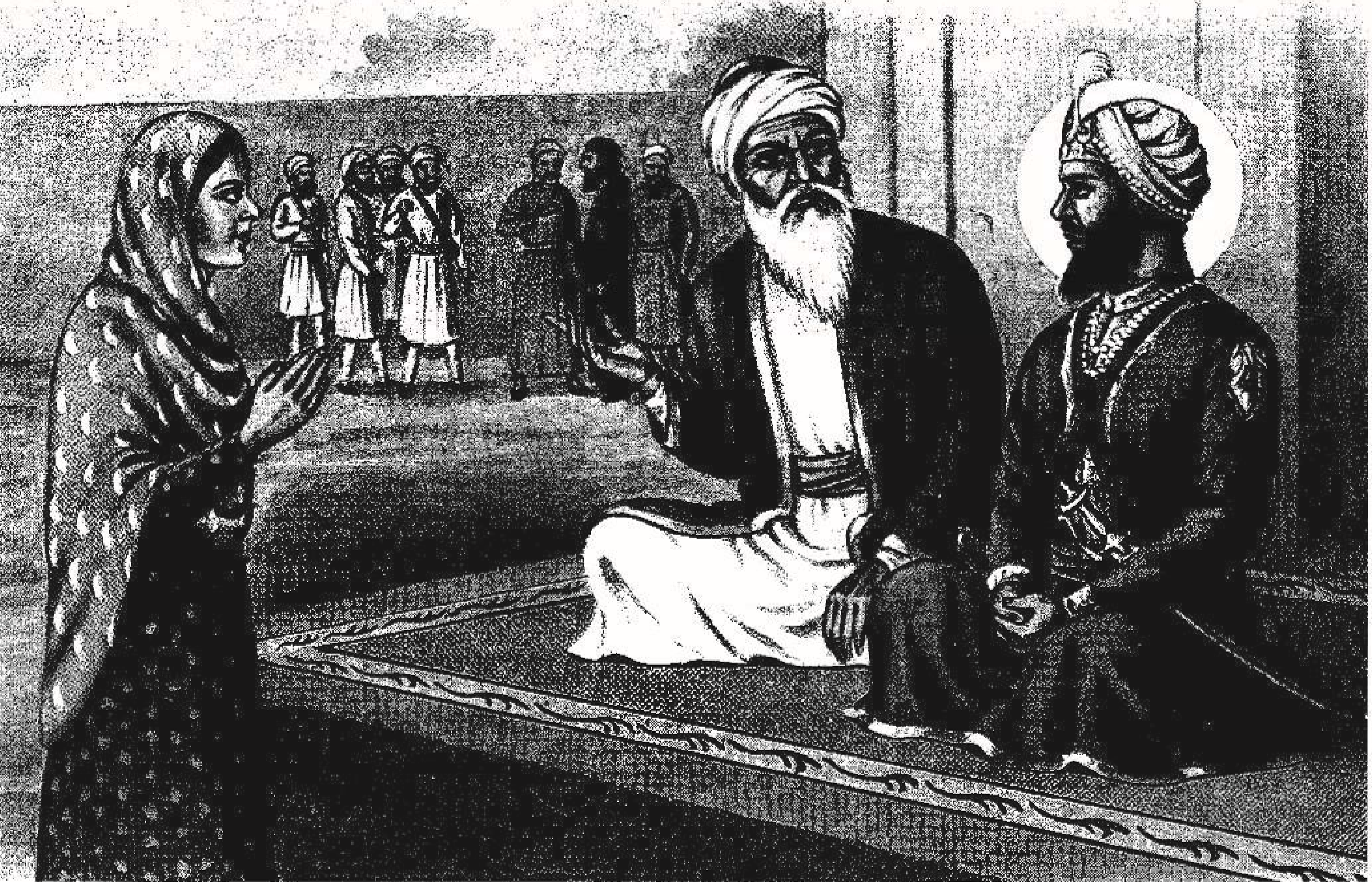
साईं मियां मीर का गुरु-घर के साथ बहुत प्रेम था। वह आम तौर पर अमृतसर आया करते थे। वह गुरु अर्जुन देव जी व बाद में गुरु हरिगोबिंद साहिब जी के साथ रूहानियत पर विचार-विमर्श किया करते थे। गुरु जी भी जब लाहौर जाते थे तो साईं मियां मीर के डेरे अवश्य जाया करते थे। वह गुरु नानक की बाणी पढ़ कर आत्मिक आनंद प्राप्त किया करते थे। इस तरह उन्हें गुरु साहिब की काफी बाणी कण्ठ हो गई थी। जब बीबी कौलां उन के पास पढ़ने आया करती थी तो साईं मियां मीर उनको गुरु नानक की बाणी के बारे में भी ज्ञान प्रदान किया करते थे। बीबी कौलां भी जब गुरु साहिब की बाणी पढ़ती तो उसे बहुत आनंद प्राप्त होता। बाणी के साथ प्रेम होने के कारण ही काफी बाणी उसे कण्ठ हो गई थी। कई बार वह यह बाणी अपने घर में भी पढ़ती रहती थी और अपनी माता जी को सुनाती थी।

एक दिन गुरु नानक की बाणी के शब्द काज़ी के कानों में भी पड़े। काज़ी एक कट्टर मुसलमान था। सिख गुरुओं को वह काफिर समझता था, इसलिए उसने अपनी लड़की को बाणी पढ़ने से रोका। बीबी कौलां अब छिप कर अथवा काज़ी की अनुपस्थिति में बाणी पढ़ती थी। वह साईं मियां मीर से कई बार विनती करती कि वह गुरु जी के दर्शन करना चाहती है। एक बार जब गुरु जी साईं मियां मीर को मिलने हेतु गए तो बीबी कौलां को गुरु जी के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। गुरु जी के दर्शन करके वह धन्य हो गई और उसके मन में गुरु जी की सिख बनने की इच्छा प्रबल हो गई।

एक दिन अपने मन की मौज में वह भूल गई कि काज़ी रुस्तम खां घर में ही है। वह गुरु के रंग में इतनी रंग गई कि वह बहुत ही सुरीली व ऊंची आवाज़ में बाणी पढ़ने लग पड़ी। जब उसके बाणी पढ़ने की आवाज़ काज़ी के कानों में पड़ी तो वह आग-बबूला हो गया। उसने एक सोटी ली और अपनी लड़की को पीटने लग पड़ा। आखिर बीबी कौलां की माता ने मिन्नत करके उसे छुड़वाया। लेकिन परमात्मा के प्रेमियों को ऐसी मार का क्या असर होता है। वह अब हर पल बाणी ही पढ़ा करती थी। जब काज़ी ने देखा कि मार-पीट से भी कोई बात नहीं बनी तो उसने अन्य काज़ियों के साथ विचार करके अपनी बेटी कौलां को मौत की सज़ा देने का फतवा ले लिया। इस बात का जब बीबी कौलां की माता को पता चला तो वह अपनी लड़की को साईं मियां मीर के डेरे छोड़ आई और उन्हें सारी बात बताई। साईं

मियां मीर जानते थे कि नवाब वजीर खां और बादशाह जहांगीर गुरु हरिगोबिंद साहिब के मित्र थे, इसलिए उन्होंने यह विचार किया कि बीबी कौलां को अमृतसर भेज दिया जाए। साईं मियां मीर ने उसी समय शाह अबदुल यार को बुलाया और उसके साथ बीबी कौलां को अमृतसर भेज दिया। गुरु हरिगोबिंद साहिब ने उसके लिए एक अलग मकान का प्रबंध किया। वहां बीबी कौलां हर समय बाणी पढ़ती और प्रभु के नाम का जाप करती रहती।

एक दिन बीबी कौलां को गुरु जी के महलों में जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वहां जाकर वह गुरु जी के नन्हें-मुन्ने बच्चों को देख कर बहुत प्रसन्न हुई। वह वहां सारा दिन उनके साथ खेलती रही। लेकिन जब घर वापिस आई तो उदास हो गई। वह सोचने लगी कि यदि उसने भी गुरु जी के साथ विवाह करवाया होता तो उसका भी एक पुत्र होता। एक दिन जब गुरु जी बीबी कौलां को मिलने गए तो उसे प्रसन्न होने की बजाय उदास देख कर बहुत हैरान हुए। जब उन्होंने इसका कारण पूछा तो बीबी कौलां ने अपनी इच्छा व्यक्त की। गुरु जी ने कहा, "यह पुत्र-पुत्रियां तो पैदा होते हैं और मर जाते हैं, हम तुझे ऐसा पुत्र देंगे जो सदैव रहेगा। उन्होंने उसे बताया कि वह उसके नाम पर एक सरोवर बनवाएंगे, जिसका नाम कौलसर होगा। गुरु के सिख कौलसर में स्नान करके फिर अमृत सरोवर में स्नान किया करेंगे। माता कौलां यह बात सुन कर प्रसन्न हो गई।



सिखों की पहली जंग

पहले केवल शाही परिवार और बादशाह ही शिकार खेला करते थे और हिन्दुओं को शिकार खेलने की आज्ञा नहीं थी। शाही परिवारों के लिए शिकार खेलने हेतु कई जंगल रक्षित थे। एक दिन सिख भी शिकार खेलते हुए उस जंगल में पहुंच गए, जहां पर शाही परिवार शिकार खेल रहा था। सिखों ने देखा कि शाही शिकारियों का एक बाज़ किसी शिकार को पकड़ रहा था। उन्होंने अपना बाज़ उसके पीछे छोड़ दिया। सिखों के बाज़ ने शाही शिकारियों के बाज़ को नीचे फैंक दिया और शिकार स्वयं पकड़ कर नीचे आ गया। शाही शिकारियों का बाज़ जब सिखों के पास आ गिरा तो उन्होंने बाज़ को पकड़ लिया। जब शाही शिकारी सिखों से अपना बाज़ वापिस लेने आए तो उन्होंने इन्कार कर दिया। उन्होंने जब युद्ध की धमकी दी तो उन्होंने कहा, "हमें युद्ध का कोई भय नहीं है। हम किसी से डरते नहीं हैं।"

शाही शिकारी ने लाहौर के गवर्नर कुलीज़ खां के पास शिकायत की। उन्होंने कहा, "आज तो सिखों ने बाज़ को हाथ डाला है, कल को वे ताज़ को हाथ डालेंगे।" कुलीज खां ने सिखों को दण्डित करने हेतु मुखलिस खां की कमान में सात हज़ार सैनिकों का एक दल भेजा।

जब गुरु जी को शाही सेना के आक्रमण का पता चला तो उन्होंने सिखों को मोर्चे सम्भालने का आदेश दिया। तीसरे दिन ही बीबी वीरो की शादी अमृतसर में होनी निश्चित हुई थी। गुरु जी ने उसी समय गुरु ग्रंथ साहिब व अपने परिवार को झब्बाल में पहुंचा दिया तथा बीबी वीरो के ससुराल में भी संदेश भेज दिया कि बारात झब्बाल में ही आए। खाने-पीने का सामान भी झब्बाल भेज दिया।

पहले पिपली साहिब के निकट शाही सेना का लोगों के समूह के साथ मुकाबला हुआ। यह ऐसी पहली जंग थी कि एक तरफ स्वतंत्रता के लिए लोग लड़ रहे थे और दूसरी ओर ज़ालिम हाकिम की सेना थी। पिपली की जंग में भाई भाना वीरता के साथ लड़ते हुए शहीद हो गए।

मुगल सेना फिर किले की ओर बढ़ी और उसने किले को घेर लिया। गुरु जी भी अपने परिवार को झब्बाल छोड़ कर किले में आ गए थे। उन्होंने पत्थर तोप चलाने का आदेश दिया। यह पत्थर तोप खेमकरण के एक कारीगर मोहरी ने एक सूखे वृक्ष को काट कर बनाई थी। इस तोप में से पत्थर निकल कर जब मुगलों पर गिरने लगे तो मुगल लुढ़कते हुए गिरने लगे। सेना के पांव डगमगा गए और वे पीछे की ओर भागने लगी। मुखलिस खां ने फिर

शाही सेना को ललकारा और कहा, "फकीरों के टोले आगे भागते हुए आप को शर्म नहीं आती।" शाही सेना में फिर जज़बात पैदा हुए और वह अन्धेरा होने तक लड़ती रही। अगले दिन प्रातः होते ही युद्ध का बिगुल बज गया। पैंदे खां ने सिखों की सेना की कमान सम्भाली और किले से बाहर निकल कर मुगलों को पांवों तले रौंद कर मारने लगा। जो भी उसके सामने आता, वह उसके एक ही वार से समाप्त हो जाता। फिर पैंदे खां ने मुखलिस खां के साथी दीदार अली को ललकारा। दीदार अली भी मुगल सेना के चुनिंदा शूरवीरों में गिना जाता था। जब वह पैंदे खां के निकट हुआ तो वह उसके पहले वार से ही समाप्त हो गया। मुखलिस खां ने फिर गुरु जी को द्वंद्व-युद्ध के लिए ललकारा। गुरु जी ने उसकी चुनौती को स्वीकार किया और शेष सभी शूरवीर पीछे हट गए। गुरु जी ने पहला तीर चलाया, जो कि मुखलिस खां के घोड़े के बीच में से गुज़र गया। इससे मुखलिस खां नीचे गिर पड़ा। गुरु जी भी अपने घोड़े से नीचे उतर कर मुखलिस खां के सामने हो गए। मुखलिस खां ने बड़े क्रोध से गुरु जी पर तीन वार किए, जिन को गुरु जी ने अपनी ढाल से बड़ी सहज अवस्था में ही रोक लिया। फिर गुरु जी ने स्वयं एक ऐसा वार किया कि तलवार मुखलिस खां की ढाल को चीरती हुई, उसके शरीर के भी दो टुकड़े कर गई। मुखलिस खां के गिर जाने के बाद मुगल सेना वहां से भाग गई।



सिखों की दूसरी जंग

पहली जंग गुरु जी बड़ी शान से जीत कर झब्बाल आ गए तथा बीबी वीरो का विवाह भय मुक्त होकर गुरु-मर्यादानुसार किया। विवाह के उपरांत आप तरनतारन होते हुए गोइंदवाल साहिब पहुंचे। वहां पहुंचने पर आप का बहुत आदर-सम्मान किया गया। गुरु अमरदास के परिवार द्वारा जब और ठहरने के लिए विनती की गई तो आप ने अपनी महिलाओं और बच्चों को वहीं छोड़ दिया तथा आप करतारपुर चले गए। माता कौलां उन दिनों करतारपुर में रह रही थीं। उनके अस्वस्थ होने की सूचना गुरु जी को मिल चुकी थी। जब गुरु जी उन्हें जाकर मिले तो वह अगले संसार में जाने की तैयारी में ही थीं। गुरु जी के दर्शन करके वह होश में आ गईं और गुर-चरणों में सिर रख कर कहने लगीं, "धन्य हो मेरे अल्लाह! मुझे जाते हुए भी दर्शन दिए हैं।" फिर वह कुछ समय के पश्चात ही स्वर्ग सिधार गईं। गुरु जी ने उनकी कब्र करतारपुर में ही बनवाई, जोकि अभी तक विद्यमान है।

माता कौलां की स्मृति में संगत कई दिन तक कीर्तन करती रही।

जब जहांगीर ने चंदू को गुरु हरिगोबिंद साहिब के सुपुर्द किया था तो उसकी सम्पत्ति भी जब्त कर ली थी। गुरु जी ने उसके गांव रुहेला को पुनः आबाद करके उसका नाम श्री हरिगोबिंदपुर रखा। माता कौलां जी के अंतिम संस्कार के पश्चात् जब गुरु जी करतारपुर से श्री हरिगोबिंदपुर आए तो उनकी भगवान दास घेरड़ के साथ टक्कर हो गई। भगवान दास श्री हरिगोबिंदपुर का भूमि कर वसूल करके जालंधर के सूबे के पास जमा करवाया करता था। एक दिन वह कुछ बदमाश अपने साथ लेकर आया, ताकि गुरु जी को श्री हरिगोबिंदपुर से निकाल दिया जाए। वह अपने बदमाशों को लेकर गुरु जी को डराने-धमकाने लगा। जब सिखों को इसका पता चला तो उन्होंने उसके दो टुकड़े करके ब्यास दरिया में फैंक दिया।

जब उसके पुत्र रत्न चंद को पता चला तो वह जालंधर के हाकिम अबदुल्ला खां के पास पेश हो गया। वह पहले ही गुरु जी के विरुद्ध था, इसलिए वह चार हज़ार सैनिकों का दल लेकर श्री हरिगोबिंद साहिब पर आक्रमण करने के लिए जा पहुंचा। जब गुरु जी को इस का पता चला तो उन्होंने भी सिखों को मोर्चे सम्भालने का आदेश दिया। शाही सेना के निकट पहुंचते ही सिखों ने तीरों की ऐसी वर्षा की कि शाही सेना जान बचाने हेतु इधर-उधर भागने लगी। रात तक अबदुल्ला खां ने अपनी सेना को बहुत फिटकार लगाई, लेकिन किराए की सेना अपनी जान बचाते हुए भाग खड़ी हुई। अगले दिन अबदुल्ला खां ने अपने दोनों पुत्रों को सेना सहित आगे भेजा और कहा, "तीरों की परवाह न करते हुए सिखों के मोर्चे पर कब्ज़ा कर लो।"

लेकिन मोर्चे पर कब्ज़ा करने से पहले ही उसके दोनों पुत्र नबी बख्श तथा करीम बख्श मारे गए। जब अबदुल्ला खां को पता चला कि उसके दोनों पुत्र मारे गए हैं तो वह सिखों की सेना को चीरता हुआ गुरु जी के समक्ष आ खड़ा हुआ। गुरु जी के पास उस समय नगारची व तीरों से लदी हुई एक खच्चर के अतिरिक्त केवल दो व्यक्ति ही थे।

अबदुल्ला खां ने गुरु जी पर अंधा-धुंध वार करने शुरू कर दिए, लेकिन गुरु जी उसके वार को अपनी ढाल से रोकते रहे। जब अबदुल्ला खां लड़ता हुआ थक गया तो गुरु जी ने उस पर खण्डे से एक ऐसा वार किया कि वह दो टुकड़े होकर धरती पर गिर पड़ा और सदा की नींद सो गया।

तदुपरांत चंदू का पुत्र कर्म चन्द अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिए गुरु जी के सामने आ गया। जब गुरु जी ने उस पर तलवार का आक्रमण किया तो गुरु जी की तलवार ही टूट गई। गुरु जी ने उस को पीरी की तलवार से मारना उचित न समझा और उसे गर्दन से पकड़ लिया। फिर उसे उन्होंने जमीन पर इतने ज़ोर से मारा कि वह गिरता ही श्वासहीन हो गया। इस प्रकार गुरु जी ने इस जंग में भी विजय प्राप्त की।

जब शाहजहां बादशाह को इस पराजय का पता चला तो उसने आदेश दिया कि शहर को तबाह कर दिया जाए, लेकिन जब उसे वजीर खां ने बताया कि गुरु जी शहर में बस रहे मुसलमानों के लिए मस्जिद बना रहे थे, जिसे भगवान दास रोक रहा था तो शाहजहां ने जालंधर के हाकिम की सम्पत्ति को जब्त करने का आदेश दे दिया।



भाई गोपाला

युद्धों में व्यस्त रहने के कारण गुरु जी ने स्वयं तो कोई बाणी नहीं लिखी थी, लेकिन वह बाणी का सम्मान बहुत करते थे। जब कीर्तन होता था तो वे बहुत प्रेम से श्रवण करते थे। वे कीर्तन में इतने एकाग्रचित हो जाते कि बाह्य संसार से ही विस्मृत हो जाते। एक दिन दरबार लगा हुआ था और गुरु जी कीर्तन के उपरांत सिखों को उपदेश दे रहे थे। शुद्ध बाणी पाठ की महत्ता को बताते हुए उन्होंने कहा कि "शुद्ध पाठ करने से जहां हृदय निर्मल होता है, वहां मानव का प्रभु से मिलन भी होता है। शुद्ध पाठ करने वाला गुरु-घर की खुशियां प्राप्त करता है।"

उपदेश करते-करते वह रुक गए और कहने लगे, "क्या आप में से कोई ऐसा है, जो जपुजी साहिब का शुद्ध पाठ कर सकता हो?"

पर्याप्त समय तक दरबार में चुप-सी रही तथा किसी भी सिख में इतना हौसला न हुआ कि शुद्ध पाठ करने का दावा पेश कर सके। बेशक सैंकड़ों सिखों को जपुजी का पाठ कण्ठ था, लेकिन गुरु जी को सुनाने में हर कोई झिझक अनुभव करता था।

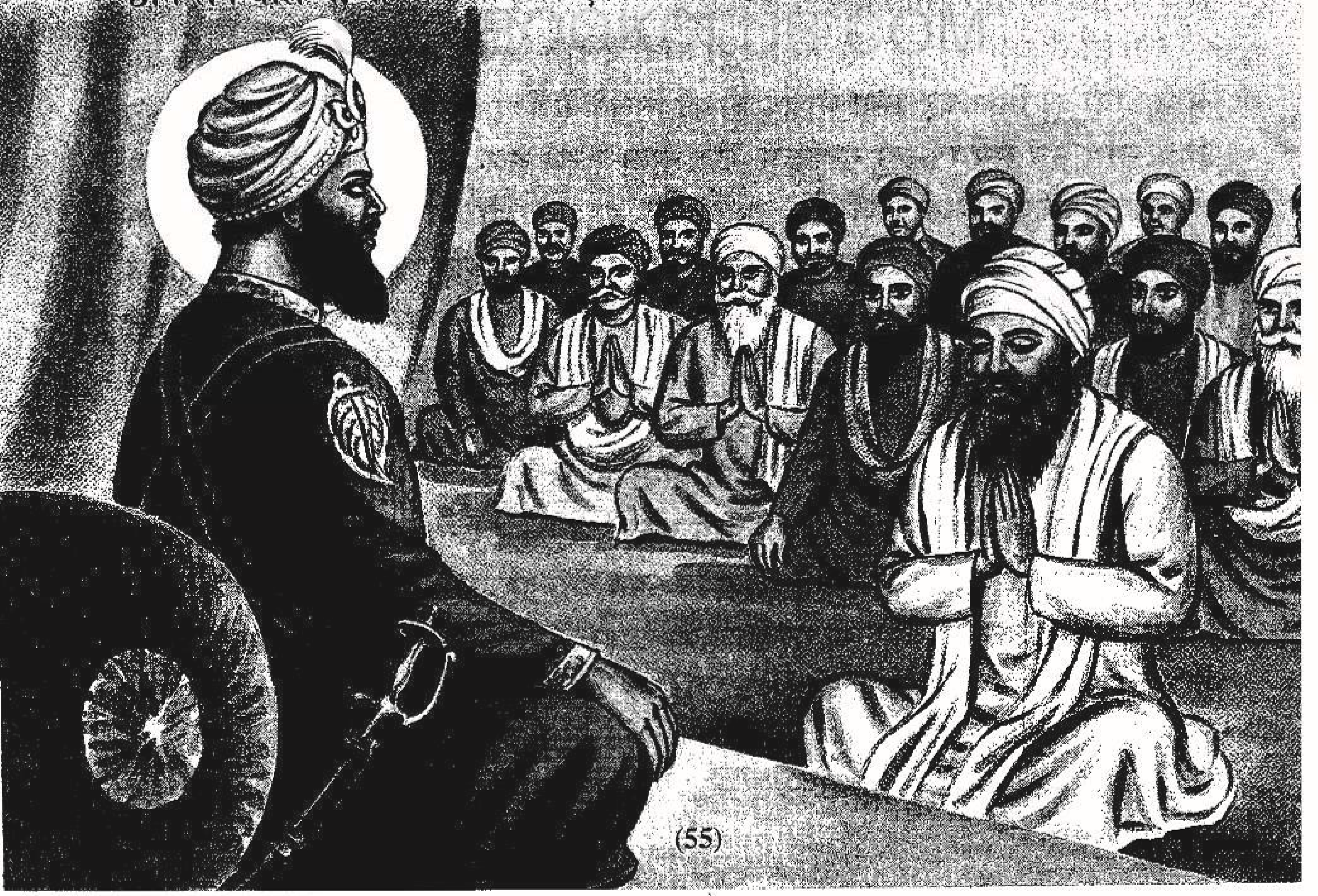
कुछ समय के पश्चात् भाई गोपाला उठ कर खड़ा हो गया। वह कहने लगा, "मैं शुद्ध पाठ करने का दावा तो नहीं करता, लेकिन मैं यत्न अवश्य करूंगा। आप जी की कृपा का जिज्ञासु हूं, आप कृपा करें तो अवश्य ही शुद्ध पाठ हो जाएगा।"

गुरु जी ने उसे पाठ करने का आदेश दिया। उस समय गुरु जी पलंग के सिरहाने की ओर बैठे थे। भाई गोपाला एकाग्र मन होकर पाठ करने लगा। वह इतना ध्यान-मग्न हो गया कि संगत में भी मस्ती छा गई। प्रत्येक श्रद्धालु पाठ के साथ-साथ झूम रहा था। उधर गुरु जी पाठ सुनते-सुनते सिरहाने से पैंद की ओर सरकते हुए आ रहे थे। गुरु जी अपने मन में सोच रहे थे कि यदि यह इतनी ही एकाग्रता व शुद्धता से पूर्ण पाठ कर गया तो मैं इसे ही गुरुगद्दी प्रदान कर दूंगा।

लेकिन भाई गोपाला जब अंतिम पउड़ी पर पहुंचा तो उसके मन की एकाग्रता भंग हो गई। उसके मन की कल्पनाएं जाग गईं। वह सोचने लगा, मेरे इतने शुद्ध पाठ करने पर गुरु जी मुझ पर प्रसन्न होकर कहेंगे, "भाई गोपाला! तूने बहुत ही एकाग्रता से पाठ किया है, हम तुम पर बहुत प्रसन्न हैं, मांगो क्या मांगते हो? फिर मुझे क्या मांगना चाहिए? मुझे वह चीना घोड़ा मांग लेना चाहिए जो कि सुभागे ने गुरु जी को भेंट किया था।" इन्हीं कल्पनाओं में भाई गोपाला जी ने जपुजी साहिब की समाप्ति का श्लोक पढ़ा। गुरु जी, जो पैंद की ओर सरकते जा रहे थे, फिर सिरहाने की ओर हो गए।

गुरु जी कहने लगे, "जब भाई गोपाला ने पाठ आरम्भ किया था तो इन्होंने अपना मन एकेश्वर के साथ जोड़ दिया था, उस समय हम ने विचार किया था कि इसको गुरुगद्दी ही दे देंगे, लेकिन अंतिम पउड़ी पर पहुंच कर इनका मन कल्पनाओं में पड़ गया और इनकी कामना चीने घोड़े की ओर हो गई। हम वह चीना घोड़ा भाई गोपाला जी को इनाम स्वरूप देते हैं।" फिर गुरु जी भाई गोपाले को सम्बोधित करते हुए कहने लगे कि यदि आप एक मन, एक चित्त, एकाग्र होकर सम्पूर्ण पाठ कर जाते तो आप गुरु-पद के अधिकारी हो जाते। परंतु प्रभु-मिलाप के बजाय सांसारिक पदार्थों की कामना ने आप को नीचे जा खड़ा किया है। अब आप ने केवल घोड़े की कामना की थी, सो घोड़ा उपस्थित है।"

भाई गोपाले ने गुरु साहिब की इन बातों को स्वीकार किया और कहा, "गुरु जी! आप सत्य कह रहे हो, हम सांसारिक प्राणी एकदम कैसे ऊपर उठ सकते हैं कि संतों-महापुरुषों का मुकाबला कर सकें। संसार में कम ही व्यक्ति होते हैं जो माया, काम, क्रोध, लोभ, मोह व अहंकार से मुक्त होते हैं।" लेकिन गुरु जी ने उसे टोकते हुए कहा, "गुरु-घर में जो भी व्यक्ति शुद्ध मन से पाठ करता है, वह संत ही है। पाठ करते समय ध्यान सांसारिक कार्यों में लिप्त रखने से पाठ करने का कोई लाभ नहीं है। लेकिन शुद्ध मन से एकाग्र होकर केवल एक बार ही पाठ कर लेने से सामान्य व्यक्ति भी महात्मा बन जाता है। अभी जो आप हम से गद्दी छीन लेने वाले थे, वह सब आप की एकाग्रता का ही परिणाम था।



बाबा श्रीचंद से मिलाप

श्री हरिगोबिंदपुर के युद्ध ने दोआबे के सिखों का बहुत हौसला बढ़ाया। अबदुल्ला खां की मृत्यु के पश्चात् दोआबे में ज़ुल्म का अंत हो गया। गुरु जी ने कुछ दिन शहर में ठहर कर वहां चार-दीवारी करवा दी और भगवान दास के घर को तोड़ कर वहां मस्जिद बना दी। उन्हीं दिनों में आप को बाबा बुड्ढा जी का संदेश पहुंचा कि उन का अंत काल अब निकट है, इसलिए उनको दर्शन दिए जाएं। बाबा बुड्ढा जी की आयु उस समय 125 वर्ष की हो गई थी।

संदेश मिलते ही गुरु हरिगोबिंद साहिब रमदास गांव में बाबा बुड्ढा जी के पास पहुंचे। बाब बुड्ढा जी गुरु जी को देख कर बहुत प्रसन्न हुए। गुरु जी ने कहा, "धन्य हो बाबा जी! आप ने पांच गुरुओं का संग किया है और गुरु नानक देव जी के दर्शन और सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त किया है। दुनिया को आप ने यह बता दिया है कि एक सामान्य व्यक्ति भी गुरु-शब्द हृदय में बसा लेने से ब्रह्मज्ञानी बन जाता है।" अगले दिन सांप की कुंज उतारने की भांति बाबा बुड्ढा जी प्रभु में लिवलीन हो गए। सांसारिक रस्में पूर्ण करने के उपरांत उन्होंने बाबा बुड्ढा जी के पड़पौत्र बाबा भाना जी को दसतार सजाई और उन्हें बाबा बुड्ढा जी का उत्तराधिकारी नियुक्त किया गया।

रमदास से चल कर गुरु जी करतारपुर रावी दरिया के पार पहुंचे, वहां गुरु नानक देव जी के पौत्रों को मिल कर बाबा श्रीचंद जी को मिलने के लिए उनके गांव बाठ चले गए। गुरु जी के साथ उस समय बाबा गुरदित्ता और बाबा सूरज मल भी थे। बाबा श्रीचंद जी गुरु हरिगोबिंद साहिब जी को मिल कर अत्यंत प्रसन्न हुए। गुरु जी अपने दोनों पुत्रों सहित बाबा जी के पास बैठ गए। गुरु जी बाबा जी को युद्धों का वृत्तांत सुनाते रहे। लेकिन बाबा श्रीचंद जी का ध्यान बाबा गुरदित्ता जी की ओर था। उनकी सूरत बाबा जी को पूरी तरह गुरु नानक जी जैसी लग रही थी। फिर बाबा श्रीचंद जी कहने लगे, "आपके कितने साहिबज़ादे हैं?" गुरु जी ने जब उन्हें बताया कि पांच हैं तो बाबा जी कहने लगे, "इन पांचों में से कोई बाबे का भी है?" गुरु जी ने कहा, पांचों ही बाबा जी के हैं, इन में से कोई भी आप ले लो।

फिर बाबा श्रीचंद गुरदित्ता जी का हाथ पकड़ कर कहने लगे, "यह आपका भी टिक्का है और हमारा भी यही टिक्का है, इसलिए अब यह दीन दुनिया का टिक्का हो गया।" फिर उन्होंने उठ कर अपनी सेली टोपी गुरदित्ता को पहना दी और कहने लगे, गुरु नानक जी की मीरी-पीरी की देन तो पहले ही आपके घर गई हुई है, यह फकीरी मेरे पास थी, यह भी आप को दे दी।"

गुरु जी बहुत प्रसन्न हुए और कहने लगे, "महापुरुषो! यह सब आप की कृपा है।" उस

दिन से बाबा गुरदित्ता को वर प्राप्त होने के कारण लोग "बाबा गुरदित्ता, दीन दुनी का टिक्का' कहने लग पड़े। इस तरह बाबा श्रीचंद जी अपनी 110 वर्ष की कमाई बाबा गुरदित्ता जी की झोली में डाल गए। इस तरह सिखी के प्रचार हेतु एक दृढ़ साधन प्राप्त हो गया। गुरु रामदास जी ने नम्रता दिखा कर बाबा जी को मोह लिया था और गुरु हरिगोबिंद साहिब ने अपना पुत्र उनके सुपुर्द करके उदासी मत्त को भी अपने में ही मिला लिया। बाद में उदासी सम्प्रदाय ने सिखी के प्रचार हेतु बहुत कार्य किए।

जब सिख पंथ बहुत कठिनाई में से गुज़र रहा था और उसके अस्तित्व को भी खतरा पैदा हो गया तो उदासियों ने घर-घर जाकर सिखी का प्रचार किया। इसलिए बाबा श्रीचंद द्वारा बाबा गुरदित्ता जी को अपना उत्तराधिकारी बनाना एक ऐतिहासिक घटना है। उस समय देश में बाबा श्रीचंद के चार प्रमुख प्रचार केन्द्र थे। बाबा श्रीचंद जी ने ये चारों प्रचार केन्द्र बाबा गुरदित्ता जी के अधीन कर दिए। उनके मुख्य प्रचारक थे—बाबा अलमस्त जी, बाबा बालू हसना, बाबा गोइंदा और बाबा फूल जी।



जानी को जानी मिला दो

सैंकड़ों मुसलमान भी गुरु हरिगोबिंद साहिब जी की ओर खिंचे चले आ रहे थे। ख्वाज़ा रौशन एक पूजनीय मुसलमान फकीर था। सैंकड़ों लोग नित्य ही उसके डेरे पर आशीर्वाद प्राप्त करने जाते थे। लेकिन ख्वाज़ा रौशन का अपना मन स्थिर नहीं था। वह स्वयं एक ऐसे गुरु की खोज में था, जिस को पाकर उसके मन को शांति मिल सके। उसने अपने किसी मित्र से गुरु जी की प्रशंसा सुनी, तो वह गुरु जी के पास आया। गुरु जी के वचन सुन कर उसको ऐसा आनंद प्राप्त हुआ कि वह सदा के लिए गुरु जी के पास रहने लगा। गुरु से दूर होने को उसका कभी भी मन नहीं करता था। वह हर पल सेवा में ही व्यस्त रहता। गुरु जी के घोड़ों की देखभाल भी करता।

एक दिन जब गुरु जी घोड़े पर सवार होकर कहीं जाने लगे तो वह बहुत व्याकुल हो उठा कि कहीं गुरु जी उससे दूर ही न चले जाएं। वह भी गुरु जी के घोड़े के पीछे दौड़ने लगा। वह एक मील तक गुरु जी के पीछे दौड़ता हुआ चला गया। जब गुरु जी को मालूम हुआ कि ख्वाज़ा रौशन उनके पीछे दौड़ता हुआ आ रहा है तो उन्होंने अपना घोड़ा रोक लिया। उन्होंने घोड़े से उतर कर ख्वाज़ा रौशन को अपनी बांहों में ले लिया और कहा, "अब तूने वह सब कुछ पा लिया है, जो पाने की तुम्हारी अभिलाषा थी।" फिर गुरु जी ने उसको दिव्य-दृष्टि प्रदान की और दोआबे में सिखी के प्रचार हेतु मसंद नियुक्त किया।

ख्वाज़ा रौशन गांव-गांव जाकर सिखी का प्रचार करता था। एक दिन जब वह सिखी का प्रचार कर रहा था तो उसकी मुलाकात सय्यद जानी शाह के साथ हुई। सय्यद जानी शाह भी मन की शांति के लिए भटक रहा था। वह इस हेतु कई सूफी पीरों-फकीरों को मिल चुका था, लेकिन उसके मन को संतुष्टि प्राप्त न हुई। ख्वाज़ा रौशन उसकी मनःस्थिति को समझ गए और कहने लगे, "लगता है अभी तक जानी को जानी नहीं मिला है।" यदि तुम अपने जानी को मिलना चाहते हो तो गुरु हरिगोबिंद साहिब को मिलो। वह तुझे तुम्हारे जानी के साथ मिला देंगे।"

पहले तो जानी शाह को विश्वास न हुआ, लेकिन जब ख्वाज़ा रौशन ने अपनी व कुछ लोगों की कहानियां सुनाईं तो जानी शाह को पूर्ण विश्वास हो गया। वह चलता-चलता गुरु जी के दर पर पहुंच गया। दरवाजे के बाहर बैठ कर ऊंचे स्वर में पुकारने लगा, "जानी को जानी मिला दो जी।" वह सारा दिन यही शब्द बोलता रहा, लेकिन गुरु जी ने उसकी ओर कोई ध्यान न दिया और न ही किसी से पूछा कि कौन ऊंची-ऊंची उनके द्वार पर बैठा बोल रहा है। लेकिन जानी शाह को भी ख्वाज़ा रौशन ने यही समझाया था कि संयम से ही

अल्लाह को प्राप्त किया जा सकता है। यदि तुम थोड़े ही समय में अपना संयम खो बैठे तो तुम्हें कुछ भी प्राप्त नहीं होगा। गुरु जी ने उसकी परवाह न करते हुए, उसके सामने ईंटें खड़ी करवा दीं, ताकि पर्दा हो जाए। लेकिन वह अपनी जगह से न हटा और एक ही बात कहता रहा, "जानी को जानी मिला दो।" जब पर्दा करने पर भी वह बोलने से न रुका तो गुरु जी ने रुपयों की एक थैली अपने सिख द्वारा उसके पास भेजी। उसने न तो थैली की ओर देखा तथा न ही उस सिख की ओर देखा, बल्कि और भी ऊंचे स्वर में पुकारने लगा, "जानी को जानी मिला दो जी।" उसने जब रुपयों की थैली भी न ली तो गुरु जी ने अपने सिख द्वारा उसके पास संदेश भेजा, "यदि बहुत जल्दी है तो दरिया में कूद जाए।"

यह सुनते ही जानी दरिया की ओर चल पड़ा। गुरु जी ने कुछ घुड़सवार उसके पीछे भेजे ताकि उसे वापिस ले आएं। सिखों के वहां पहुंचते-पहुंचते वह दरिया में कूद पड़ा। सिख भी उसके पीछे ही दरिया में कूद पड़े और उसे पकड़ कर बाहर ले आए। घुड़सवार सिखों ने उसे गुरु जी के सामने पेश किया। गुरु जी ने उठ कर उसको अपने सीने से लगाया और उसे नाम-दान प्रदान किया। गुरु जी के स्पर्श मात्र से ही उसके मन को शांति मिल गई और उसे सब कुछ प्राप्त हो गया।

जब गुरु जी ने देखा कि वह अब अपने अल्लाह में पूर्णतया लिवलीन हो गया है तथा जानी को जानी मिल गया है तो उन्होंने उसे प्रचारक नियुक्त कर दिया।



भाई गुरदास जी का अंतिम सफर

भाई गुरदास जी अपने अंतिम समय में गोइंदवाल में रह रहे थे। भाई गुरदास जी एक ऐसे व्यक्ति थे, जो गुरु अमरदास के समय से सिखी का प्रचार करते आ रहे थे। आप का जन्म 2 कार्तिक, सम्वत् 1612 विक्रमी को अमृतसर के निकट गांव बासरके में हुआ था। आप गुरु अमरदास जी के भतीजे थे। जब गुरु अमरदास जी ने गोइंदवाल नगर का निर्माण करवाया तो गुरु अंगद देव जी ने उनको परिवार सहित गोइंदवाल में निवास करने का आदेश दिया। गुरु अमरदास जी अपने सभी भाइयों व उनके परिवार सहित वहां आकर रहने लगे थे। उनके परिवार में उनका एक भतीजा भाई गुरदास भी था। गुरु अमरदास जी के मार्गदर्शन में भाई गुरदास ने श्रेष्ठ विद्या प्राप्त की। गुरु जी की संगति में रह कर आप पंजाबी, हिन्दी, संस्कृत और ब्रज भाषा के महान विद्वान बन गए। विद्या प्राप्ति के पश्चात् आप ने सिखी के प्रचार की सेवा बड़ी नम्रता, श्रद्धा व लगन से की। आप जी ने अनेक प्राणियों को सिमरन, सेवा और परोपकार की शिक्षा दी।

गुरु अर्जुन देव जी ने आप को सर्वोच्च सम्मान यह प्रदान किया कि गुरु ग्रंथ साहिब की प्रथम बीड़ उन्होंने आप से लिखवाई। आप ने इस बीड़ को लिखने का कार्य बड़े परिश्रम से किया। इस बीड़ को लिखने से ही आप को ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त हो गया।

आप एक उच्चकोटि के कवि भी थे। आप ने अपनी वारों की रचना पंजाबी में की और कबित्त स्वय्ये ब्रज भाषा में लिखे। आप की बाणी को गुरु ग्रंथ साहिब की 'कुंजी' भी कहा जाता है। कुंजी इसलिए कहा जाता है क्योंकि आप की रचना गुरुबाणी के गहन रहस्य व भाव को स्पष्ट करने का कार्य करती है। आप ने अपनी वारों में गुरमति दर्शन, गुरु-भक्ति, गुरमुख का पद, मनमुख की पहचान, गुरमति नैतिकता और सदाचार की व्याख्या की है।

अकबर जब अपना नया मज़हब दीन-ए-इलाही चलाने लगा था तो उसने अलग-अलग धर्मों के विद्वान बुलवाए थे तो सिख मत का सिद्धांत पेश करने के लिए आप आगरा गए थे। आप ने अपनी विद्वता से ही वहां उपस्थित अन्य धर्म मुखियों को कील लिया था। पंडितों के प्रभाव को समाप्त करने तथा सिखी का प्रचार करने के लिए आप बनारस भी गए थे और पर्याप्त समय वहां प्रचार करके आप कई सिखों को प्रचारक नियुक्त कर आए थे।

जब गुरु हरिगोबिंद साहिब ने अकाल तख्त की स्थापना की तो अकाल तख्त का प्रथम जत्थेदार आप जी को ही नियुक्त किया गया। गुरु हरिगोबिंद साहिब कहा करते थे, *"भाई सम नहि सिख अर मम भाइओ।"* जब गुरु जी अकाल तख्त पर बैठते थे तो आप को स्वयं बाजू पकड़ कर अपने निकट बिठाया करते थे।

जब भाई गुरदास को अपना अंतिम समय निकट आता अनुभव हुआ तो उन्होंने गुरु हरिगोबिंद साहिब की ओर संदेश भेजा। उनका संदेश मिलते ही गुरु जी सभी कार्य छोड़ कर गोइंदवाल पहुंच गए। जब अंत काल में भाई गुरदास ने गुरु साहिब को अपने पास देखा तो उनका चेहरा गुलाब की भांति खिल उठा। गुरु जी ने सिखों को बाणी पढ़ने हेतु कहा और स्वयं भाई जी के पास बैठ गए। भाई गुरदास जी ने फिर एक बार गुरु साहिब की ओर देखा। गुरु जी ने उन्हें दिलासा दिया कि वे अब आ गए हैं। तब भाई जी कहने लगे, "मेरा अंत काल अब निकट है। सिखों को आप आदेश करना कि जब मेरे प्राण निकलें तो वे वाहिगुरु का जाप करें। संस्कार के पश्चात् मेरा कोई देहुरा न बनवाया जाए, मेरी अस्थियां व राख ब्यास दरिया में प्रवाहित की जाएं। तदुपरांत भाई गुरदास जी ने प्राण त्याग दिए। भाई गुरदास जी की अर्थी को एक तरफ कंधा गुरु हरिगोबिंद साहिब व बाबा भाना जी तथा दूसरी ओर भाई जेठा जी व भाई बिधी चंद ने दिया।



भाई बिधी चंद द्वारा घोड़े वापिस लाना

एक बार काबुल की संगत गुरु दर्शनों को आई तो उनके साथ भाई करोड़ी मल भी आया, जो कि एक अच्छी नस्ल के घोड़े गुलबाग और दिलबाग गुरु जी को भेंट करने के लिए लाया था। जब यह सारी संगत लाहौर में घूम-फिर रही थी तो लाहौर के हाकिम अनायतुल्ला की दृष्टि उन घोड़ों पर पड़ गई। उसने वे घोड़े खरीदने चाहे, लेकिन करोड़ी मल ने यह कह कर इन्कार कर दिया कि वह घोड़े बेचने के लिए नहीं लाया, बल्कि अपने इष्ट गुरु हरिगोबिंद साहिब को भेंट करने हेतु लाया है। हाकिम उसकी इस बात पर चिढ़ गया। उसने उससे वे दोनों घोड़े छीन लिए। जब काबुल की संगत गुरु जी के पास पहुंची तो समस्त संगत ने अपने उपहार गुरु जी के समक्ष रख कर माथा टेका, लेकिन करोड़ी मल कोई भेंट आगे रखने की बजाय उदास होकर बोला, "महाराज! मैं आप को भेंट देने के लिए दो बढ़िया नस्ल के घोड़े गुलबाग व दिलबाग लाया था, परंतु वह रास्ते में ही लाहौर के हाकिम अनायतुल्ला ने छीन लिए हैं। मेरे पास अब आप को भेंट करने के लिए कुछ भी नहीं बचा है।" गुरु जी ने उसे ढांढ़स बंधाया और मुस्करा कर बोले, "तुम्हारे घोड़े हमें पहुंच गए हैं, उन्हें अब हम स्वयं ही ले आएंगे। तुम चिन्ता मत करो, हम तुम पर बहुत प्रसन्न हैं, तुम्हारी बहुमूल्य भेंट हम लेकर ही रहेंगे।" भाई करोड़ी मल को संतुष्टि हो गई और वह बहुत ही प्रसन्न हुआ।

गुरु जी ने बिधी चंद को अपने पास बुलाया। उसे थपकी देकर पांचों गुरुओं की स्तुति करके अरदास की और उसे लाहौर की ओर भेज दिया। बिधी चंद लाहौर पहुंच कर भाई जीवन के घर ठहर गया। अगले दिन उसने एक घास खोदने वाले का रूप धारण किया तथा बढ़िया घास की एक गठरी खोद कर और झाड़ कर किले की बाहरी दीवार के पास जा बैठा। घोड़ों का दरोगा सैदे खां जब बाहर आया तो बढ़िया घास देख कर बहुत प्रसन्न हुआ और वह घास सस्ते दाम में मिल जाने के कारण और भी प्रसन्न हो उठा। उसने बिधी चंद को वह घास की गठरी उठवाई और घोड़ों को डालने के लिए उसे शाही अस्तबल में ले गया। भाई बिधी चंद घोड़ों को घास डालता रहा और उन्हें हाथ फेर कर प्यार भी करता। भाई बिधी चंद नित्य ही घास लाता और घोड़ों को खिलाता। उस के द्वारा नित्य की सेवा-सम्भाल के कारण घोड़े भी भाई बिधी चंद को पहचानने लगे और जब वह घास लेकर आता तो घोड़े आगे से हिनहिनाते। सैदे खां ने भाई बिधी चंद का इतना प्रेम देख कर उसे घोड़ों की सेवा हेतु वहीं पर रख लिया। वह स्वयं तो भोला-भाला बन कर रहता, परंतु घोड़ों से अपना प्रेम दिन-प्रतिदिन बढ़ा रहा था। वह नित्य रात को एक बड़ा पत्थर बाहर दरिया में फैंक देता था। दरिया रावी किले की दीवारों को छू कर बह रहा था। पत्थर फैंकने की आवाज़ सुन कर

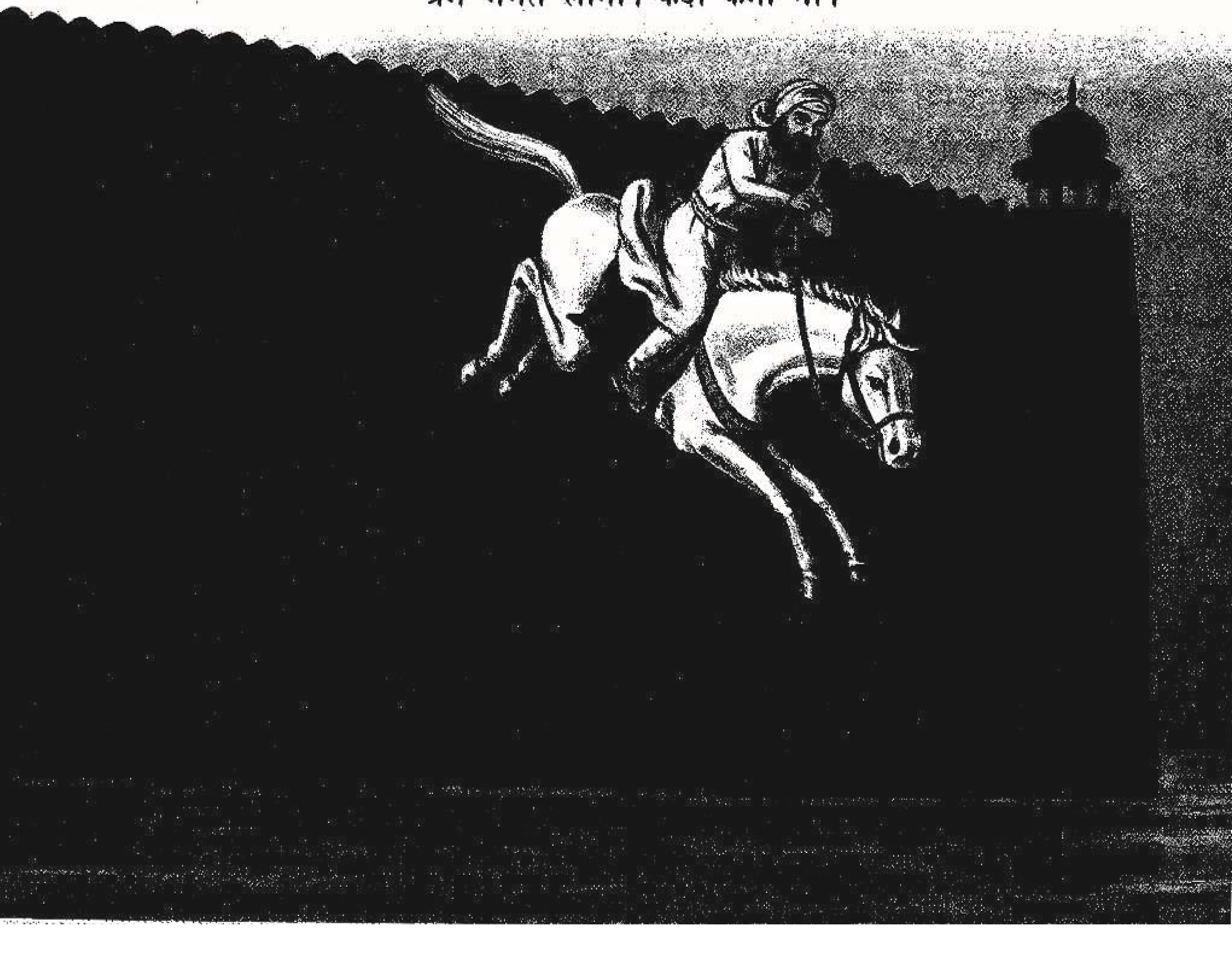
जब पहरेदार देखने आते तो उन्हें कुछ भी नज़र न आता। अंत में वह समझने लगे कि कोई जानवर ही किले की दीवार से टकराता है। इसलिए वह इस तरफ से निश्चित हो गए।

बिधी चंद अपना वेतन भी पहरेदारों को खिला देता था। वह भी उस पर बहुत प्रसन्न थे। जब बिधी चंद को अगला वेतन मिला तो उसने पहरेदारों को इतना खिलाया-पिलाया कि वह बेहोश हो गए और बिधी चंद ने उन्हें एक कमरे में बंद कर दिया।

फिर उसने चाबियां लीं और घोड़े गुलबाग को खोला तथा पीछे हट कर उससे इतनी ज़ोर से छलांग लगवाई कि वह बिधी चंद सहित किले की दीवार कूद कर दरिया पार करके आ गया। भाई बिधी चंद ने जाकर वह घोड़ा गुरु जी को पेश कर दिया। गुरु जी ने भरे दरबार में भाई बिधी चंद की बहुत प्रशंसा की। दूसरा घोड़ा बिधी चंद ज्योतिषी बन कर ले आया था।

जब वह दूसरा घोड़ा भी लेकर गुरु जी के पास पहुंचा तो गुरु जी ने उसको सीने से लगा लिया और कहा:-

बिधी चंद छीना। गुरू का सीना।
प्रेम भगत लीना। कदी कमी ना।



सिखों की तीसरी जंग

जब दोनों घोड़े गुरु जी के पास पहुंच गए तो गुरु जी समझ गए कि अब एक और युद्ध अवश्य होगा। बिधी चंद जब दूसरा घोड़ा लेकर आया था तो वह ललकार कर कह आया था कि "ये दोनों घोड़े गुरु हरिगोबिंद जी के थे, पहले भी मैं घोड़ा ले गया था और अब यह दूसरा घोड़ा भी मैं ले जा रहा हूं। आओ यदि पकड़ा जाता है तो पकड़ लो।"

जिस बलशाली हुकूमत के शाही अस्तबल में से एक नवयुवक दो घोड़े इतने पहरेदारों के होते हुए निकाल कर ले जाए तो उस हुकूमत की इज्जत ही कहां रह जाती है।

इसलिए गुरु जी ने युद्ध की तैयारियां शुरू कर दीं। गुरु जी उस समय मालवा में थे। उन्होंने उस क्षेत्र के ज्ञाता राय जोध को पूछा, "आप इस क्षेत्र को जानते हो, कोई ऐसा स्थान बताएं, जहां अल्प सेना अधिक शत्रुओं को जीत सके।" राय जोध ने उन्हें कई स्थान बताए, लेकिन गुरु जी ने नथाने की ढाब को उचित स्थान समझ कर उसे युद्ध के लिए चुन लिया। इस स्थान की यह विशेषता थी कि इसके एक ओर ढाब थी और शेष तीन ओर रेत के पहाड़ थे। युद्ध के समय पानी पर कब्ज़ा रखना अत्यंत आवश्यक होता है। लाहौर से भाई बोहड़ू द्वारा समाचार प्राप्त हुआ कि अनायतुल्ला ने लल्ला बेग व कमर बेग को दस हज़ार सैनिक दल के साथ मालवा की ओर भेजा है। जब यह सेना मालवा की ओर आ रही थी तो मार्ग में काबली बेग भी इन के साथ मिल गया। इस तरह शाही सेना की गिनती और भी बढ़ गई।

गुरु जी की सेना का नेतृत्व राय जोध कर रहा था। सारी सेना की गिनती लगभग तीन हज़ार थी। लेकिन जब नगारा बजा तो गुरु के प्यारे जो भी शस्त्र हाथ लगा वही लेकर गुरु जी की सेना में शामिल हो गए।

ढूंढता–ढूंढता लल्ला बेग भी निकट पहुंच गया। गुरु जी का पता लगाने हेतु उस ने हसन खां को भेजा। सिखों ने उसे आता देख कर वहीं पर दबोच लिया। लेकिन गुरु जी ने उसे छुड़वा लिया। वापिस आकर उसने लल्ला बेग को बताया कि गुरु जी की सेना प्रत्येक आक्रमण का सामना करने को तैयार है।

जब लल्ला बेग को यह पता चला कि पानी तो गुरु जी के कब्ज़े में है तो वह पानी ढूंढने के लिए केड़ों की माझी की ओर चल पड़ा। सिखों ने उचित समय जान कर गोलियों की वर्षा कर दी। अचानक हमला हो जाने के कारण शाही सेना घबरा गई। वह पीछे की ओर भागने लगी। पीने के लिए कुंओं का खारा पानी मिलता था, जिसके कारण शाही सेना का पर्याप्त अंश बीमार हो गया। सारी रात युद्ध होता रहा। सुबह होने पर लल्ला बेग ने देखा कि चारों

ओर मृत शरीर पड़े हैं। लल्ला बेग क्रोधित हो उठा, उसने सेना की कमान स्वयं सम्भाल ली। गुरु जी ऊंचे टिब्बे पर बैठे सेना का मार्गदर्शन कर रहे थे। लल्ला बेग, कमर बेग और काबली बेग तीनों आगे बढ़े। दोनों ओर से तीरों की वर्षा होने लगी। यह सब कुछ देख कर काबली बेग आगे बढ़ा और उसने गुरु जी को ललकारा। गुरु जी ने उसे वार करने को कहा, लेकिन जब काबली बेग ने वार किया तो गुरु जी ज़ख्मी हो गए। फिर उन्होंने क्रोध में आकर ऐसा तीर छोड़ा कि काबली बेग के दो टुकड़े हो गए। काबली बेग को गिरता देख कर कमर बेग आगे बढ़ा। गुरु जी के ज़ख्मों को राय जोध ने बांध दिया और सामना करने हेतु स्वयं आगे बढ़ा। फिर राय जोध ने ऐसी तलवार चलाई कि कमर बेग भी मारा गया।

लल्ला बेग फिर स्वयं आगे बढ़ा। उसको रोकने के लिए जती मल आगे आया, लेकिन वह मारा गया। गुरु जी फिर स्वयं आगे बढ़े। लल्ला बेग ने उन पर तीर छोड़ने शुरू कर दिए। गुरु जी अपनी ढाल से उसके वारों को रोकते रहे। गुरु जी ने फिर ऐसा तीर चलाया कि उसका घोड़ा ही नीचे गिर पड़ा। लल्ला बेग फिर पैदल ही आगे बढ़ा। गुरु जी घोड़े से उतर कर उसके सामने हो गए। द्वंद्व युद्ध शुरू हुआ। लेकिन गुरु जी ने ऐसा वार किया कि लल्ला बेग की वहीं मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु के पश्चात् तुर्कों में भगदड़ मच गई। गुरु जी ने जख्मियों का इलाज करवाया और शहीदों का अंतिम संस्कार अपनी निगरानी में करवाया।



हसन खां

लल्ला बेग का जासूस हसन खां बच गया। हसन खां जहांगीर का जासूस बन कर सिखों में ही रहा तथा सिखों के क्रिया-कलाप देख कर वह भी गुरु जी का सिख बन गया। बादशाह शाहजहां का क्रोध शांत करने हेतु वह शेष बची सेना को एकत्र करके लाहौर ले गया। बादशाह उस समय लाहौर आया हुआ था। गुरु जी की इस युद्ध में हुई विजय पर वजीर खां भी काफी खुश था। वह बादशाह के पास पहुंचा और कहने लगा, "लल्ला बेग जो कि दो घोड़े वापिस लेने गया था, उसका पता नहीं चला कि वापिस आया है अथवा नहीं।" उस समय सलाबत खां ड्योढ़ी बरदार ने विनती की, "जनाब! युद्ध के मैदान से हसन खां आया है, उसे बुला कर पूछ लें।" हसन खां को उसी समय दरबार में बुलाया गया। हसन खां ने आकर बादशाह को सलाम की। बादशाह ने पूछा कि लल्ला बेग का युद्ध में क्या हुआ?

हसन खां कहने लगा, "जहांपनाह ! यदि आप मुझे जीवन दान दे दोगे तो मैं सारा वृत्तांत सुना देता हूं।" बादशाह ने कहा कि ठीक है, तुम्हारे सभी दोष क्षमा कर दिए, तुम सत्य बात बताओ।

हसन खां कहने लगा, "लल्ला बेग और कमर बेग बहुत ही शीघ्र उस स्थान पर पहुंच गए थे, जहां पर गुरु टिका हुआ था। लेकिन वह सारा क्षेत्र जंगल ही था। पहले प्रबंध न कर पाने के कारण वहां पीने को पानी न मिला और कुंओं का खारा पानी पीकर सभी सैनिक और घोड़े बीमार हो गए। वहां केवल जंगली लोग ही नज़र आते थे। आस-पास कहीं भी कोई गांव अथवा आबादी नहीं थी। वहां पर केवल एक ढाब पानी की थी, जिस पर गुरु जी ने पहले ही कब्ज़ा कर रखा था। उसने लल्ला बेग को काफी विनती की कि आगे मत जाओ, लेकिन उसने हमारी एक न मानी, जंगली कांटेदार झाड़ियों के निकट जाकर सेना को खड़ा कर दिया। जाते ही युद्ध शुरू हो गया और सिखों पर उसने आक्रमण कर दिया। लेकिन सिखों ने प्रत्युत्तर में ऐसा आक्रमण किया कि शाही सेना को भागने के लिए मार्ग ही नहीं मिल रहा था। शाही सेना ने रात के अंधेरे में मशालें जला कर आक्रमण किया, लेकिन ऐसी तेज़ वायु चली कि सभी मशालें बुझ गईं और शीत लहर ने सारी शाही सेना सुन्न कर दी। हाथ-पांव निश्चल हो गए और बंदूकें हाथ से गिर पड़ीं। सारी सेना बेहोश हो गई। यदि सिख चाहते तो सारी सेना को रातों-रात मार सकते थे, लेकिन उनके गुरु का आदेश था कि जो कोई वार करे उसी को जवाब देना है। किसी दूसरे को नहीं छेड़ना। रातों-रात दो भाग सेना मर गई और एक भाग ही शेष रही। अगले दिन लल्ला बेग और कमर बेग मृत सेना को देख कर रोने लगे। लेकिन तब क्या हो सकता था। फिर भी उन्होंने अपना अभिमान नहीं

त्यागा। हमने बहुत मनाया कि गुरु जी स्वयं कभी आक्रमण नहीं करते। सेना को स्वस्थ हो लेने दो फिर युद्ध करेंगे। लेकिन वह किसी की बात सुनते ही नहीं थे। उन्होंने सभी को मदिरा पान करवा कर सिखों पर आक्रमण करने के लिए आगे भेज दिया। पता नहीं इतनी संख्या में सिख कहां से आ गए कि बहुत ही भयानक जंग हुई। लल्ला बेग और काबली बेग को तो गुरु जी ने मार दिया तथा शेष हाकिम और सेना सिखों के हाथों मारे गए। जब सेना ने देखा कि उसके सभी अधिकारी मारे गए हैं तो वे भाग खड़ी हुई। सिखों ने उनका पीछा नहीं किया, लेकिन जंगली लोगों ने उन्हें घेर लिया तथा मारपीट करके उनके शस्त्र, घोड़े व कपड़े आदि छीन लिए। दो हज़ार सैनिकों को तो मैं बचा कर ले आया हूं, शेष जख्मियों व अर्ध मृत को गुरु के सिख इलाज हेतु उठा कर ले गए। वे भी स्वस्थ होकर आ जाएंगे। अट्ठारह हज़ार सैनिक लल्ला बेग की नासमझी के कारण मौत के मुंह में चले गए।

बेशक अब हम कहते हैं कि हम अपनी नासमझी के कारण मारे गए, लेकिन मुझे पता है कि गुरु पर आक्रमण के लिए चाहे इससे भी दस गुणा अधिक सेना भेज दी जाए, वह फिर भी गुरु को जीत कर नहीं आ सकती। गुरु खुदा का नूर हैं, यदि वह चाहें तो समस्त संसार पर विजय प्राप्त कर सकते हैं, लेकिन वह शासन व दौलत को तुच्छ समझते हैं।

यह सारा घटनाक्रम सुन कर बादशाह बड़ा प्रसन्न हुआ और वजीर खां की सिफारिश पर हसन खां को काबुल का सूबेदार



फतूही ग्रेवाल

युद्ध में विजय प्राप्त करने के पश्चात् गुरु जी अपने डेरे पर आ गए। गुरु जी व राय जोध ने अपने जख्मों पर मरहम-पट्टी करवाई। कुछ ही दिनों में वे स्वस्थ हो गए।

युद्ध में शहीद हुए सिखों के लिए एक अंगीठा तैयार करवाया गया और उसमें सभी का एक साथ संस्कार किया गया। उन्होंने कुछ राख सतलुज में डलवा दी और शेष वहीं पर दबा दी, जहां आज कल शहीद गंज बना हुआ है। फिर उन्होंने निकट के गांवों के लोगों को एकत्र करके एक बहुत बड़ा गड्ढा खुदवाया, उसमें मारे गए मुसलमानों की लाशें डलवाईं और उन्हें वहां दफना दिया। फिर उस पर एक बड़ा चबूतरा बनवा कर पक्का फर्श लगवा दिया। गुरु जी इस दमदमे पर पंद्रह दिन दीवान लगाते रहे तथा कीर्तन करवाते रहे। आज कल वहां पर लहर नगर विद्यमान है।

जो मुसलमान ज़ख्मी हुए थे, जब वे स्वस्थ हो गए तो उन्हें खर्चे सहित लाहौर बादशाह के पास भेज दिया। उन्होंने बादशाह को गुरु जी के व्यवहार के बारे में बताया। गुरु जी की प्रशंसा सुन कर बादशाह को विश्वास हो गया कि गुरु जी कोई महान पीर हैं। शाहजहां भी डर गया कि उन के साथ युद्ध करना उचित नहीं, क्योंकि कहीं ऐसा न हो कि वह श्राप देकर मेरा शासन ही नष्ट कर दें। इसलिए शाही सेना ने पुनः कोई आक्रमण नहीं किया।

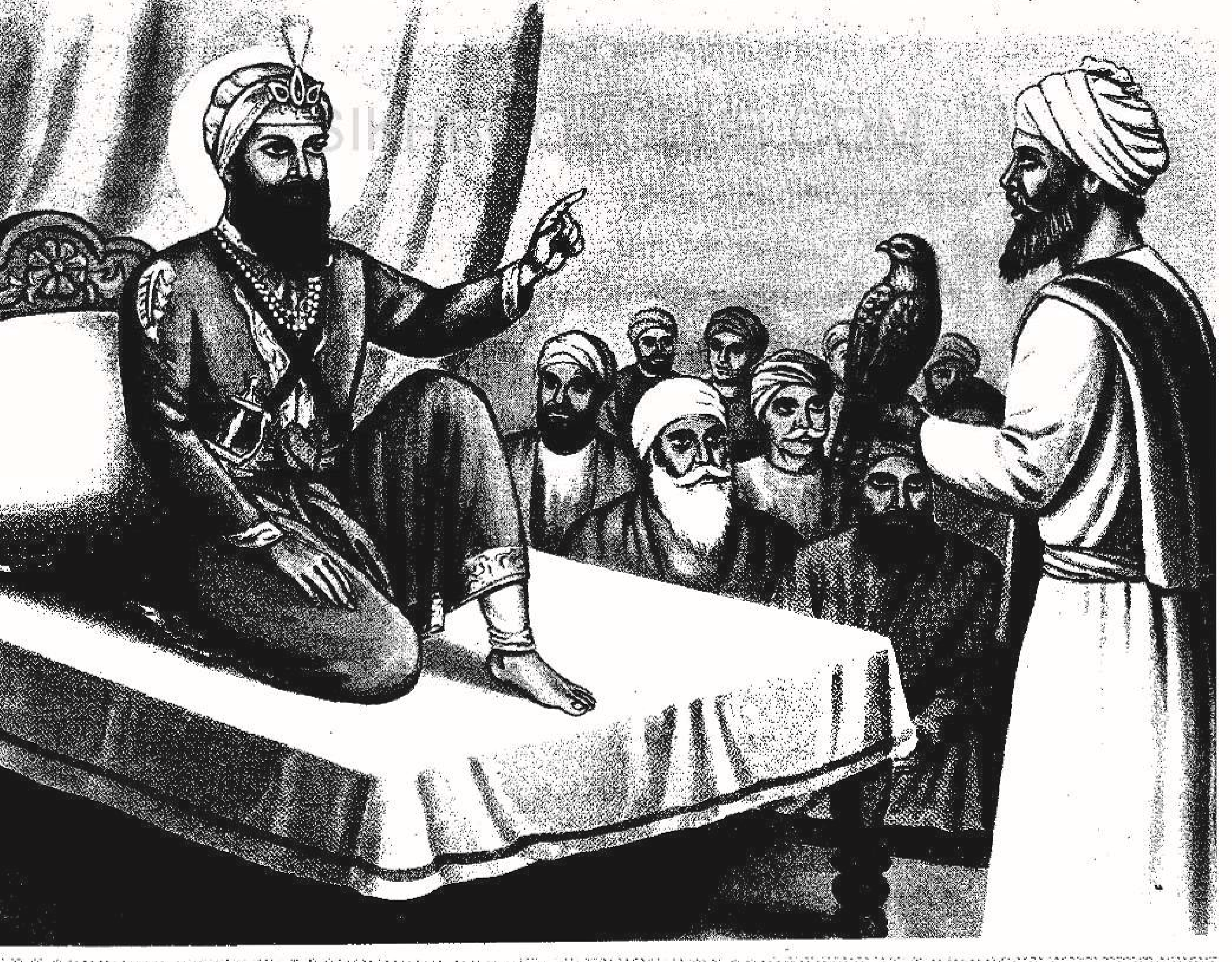
एक दिन गुरु जी राय जोध व अन्य सिखों सहित शिकार खेलने गए। मार्ग में उन्होंने देखा कि बहुत बड़ा सांप धरती पर पड़ा तड़प रहा है। जब उस सांप ने गुरु जी के दर्शन किए तो वह मुक्त हो गया। जब वह मर गया तो राय जोध ने देखा कि उस सांप में से अनेक कीड़े बाहर निकले। यह देख कर राय जोध कहने लगा, "महाराज! यह क्या विचित्र लीला है कि इस सांप में से इतने कीड़े बाहर निकले हैं।

यह सुन कर गुरु जी ने फुरमाया, "यह पूर्व जन्म में एक कल्याणकारी महंत बना हुआ था। यह अपने सेवकों के घर से पूजा खाता था, लेकिन यह किसी का कल्याण नहीं कर सका था। प्रभु भक्ति की बजाय यह ऐश्वर्यपूर्ण जीवन व्यतीत करता था। जब यह मर गया तो उस पाखंडी महंत को सर्प योनि में जाना पड़ा। जिस प्रकार यह सेवकों को खाता था, उसी प्रकार उन लोगों ने कीड़े बन कर इसका मांस नोंच-नोंच कर खाया है। अब हमें देख कर इसको मुक्ति प्राप्त हुई है। उस सांप का कल्याण करके गुरु जी अपने डेरे वापिस आ गए।

भाई राय जोध, सलेम शाह आदि गुरु जी को कांगड़ से जाने नहीं दे रहे थे। अंततः गुरु जी उनसे विदा होकर गांवों से होते हुए कीरतपुर की ओर चल पड़े। मार्ग में वे कई गांवों में ठहर कर उपदेश करते जा रहे थे। जब वह गांव गुजरवाल में पहुंचे तो उस गांव के

सरदार फतूही ग्रेवाल ने उनकी बहुत सेवा की। एक दिन जब वह दर्शनों हेतु आया तो अपने हाथ पर एक पक्षी छिकुल को बिठा लाया। गुरु जी ने उसका संतोष देखने हेतु उससे वह पक्षी मांगा। गुरु जी की बात सुन कर फतूही कहने लगा, "आप के पास तो देश-विदेश से नाना प्रकार के उपहार आते हैं। मेरे पास तो यही एक पक्षी है, जो मुझे जान से अधिक प्रिय है।" गुरु जी बोले, "तुम तो कहते थे कि मेरा तन, मन व धन सब कुछ आप का है, लेकिन यह एक पंखों की मुट्ठी देने को तैयार नहीं।"

गुरु जी को उसने वह पक्षी न दिया तथा शर्मिन्दा होकर घर को चला गया। जब वह घर जाकर खाना खाने लगा तो उसने उस पक्षी को जिस रेशमी डोर से बांधा हुआ था, वह पक्षी उसे निगल गया। फतूही ने अभी एक ग्रास ही लिया था कि वह छिकुल तड़पने लगा। फतूही ने उसे बचाने के कई प्रयत्न किए, लेकिन वह ठीक न हुआ। अंततः वह उस छिकुल को लेकर गुरु जी के पास पहुंचा और कहने लगा, "यदि आप इसे स्वस्थ कर दें तो यह आपका ही हुआ।" गुरु जी ने जब उस पक्षी पर हाथ फेरा तो उसने वह डोरी उगल दी तथा वह ठीक हो गया। ऐसी प्रत्यक्ष लीला देख कर फतूही गुरु जी के चरणों में गिर पड़ा।



बाबा बूढन शाह

फतूही ग्रेवाल से विदा होकर गुरु जी बलाले, खमाणो, संघल, चमकौर व रोपड़ आदि गांवों में सिखी का प्रचार करते हुए 22 वैशाख सम्वत् 1669 विक्रमी को कीरतपुर पहुंच गए। सूरज मल पांच कोस आगे आकर गुरु जी को मिला। गुरु के महल पहुंचने पर बहुत उत्साह मनाया गया तथा रात को दीपमाला की गई।

जब संगत को पता चला कि गुरु जी स्थाई तौर पर कीरतपुर में आ गए हैं तो देश-विदेश की संगत वहां पर उनके दर्शनों को आने लगी। मसंद भी स्वयं ही सेवा-भेंट आदि लेकर वहीं उपस्थित होने लगे। टिक्का बाबा गुरदित्ता जी, जो पहले करतारपुर में रह रहे थे, वह भी कीरतपुर आ गए। कीरतपुर में गुरु नानक देव के काल से ही एक फकीर बाबा बूढन शाह रहा करते थे। उन्होंने बकरियां पाल रखीं थीं तथा दिन के समय पहाड़ियों पर चराने ले जाया करते थे। वह केवल बकरियों का दूध पीकर ही गुज़ारा करते थे, किसी से कुछ भी नहीं मांगते थे।

एक बार जब गुरु नानक देव जी यहां आए थे तो साईं बूढन शाह ने उनके आगे दूध का कटोरा रखा था। गुरु नानक देव जी ने उस समय वचन किया था कि यह हमारी अमानत आपके पास ही है, हम छठे स्वरूप में आकर आपसे यह दूध अवश्य पीने आएंगे। साईं बूढन शाह गुरु नानक देव का उपासक बन गया और वह हर समय यही अरदास करता था कि कब गुरु जी आएं और उससे दूध पीकर उसे जन्म-मृत्यु के बंधन से मुक्त करें।

एक दिन गुरु हरिगोबिंद साहिब व बाबा गुरदित्ता जी शिकार खेल कर जब वापिस लौटे तो वह बाबा बूढन जी के पास गए। गुरु जी ने कहा, "बाबा जी! हमारी अमानत वाला दूध हमें पिलाओ।"

बाबा बूढन शाह ने बड़े गौर से उनकी ओर देखा और कहने लगे, "ज्योति तो गुरु नानक साहिब वाली ही प्रतीत होती है, लेकिन रूप वह नहीं है। यदि रूप भी वही दिखाओ तो मैं दूध पिलाऊंगा। गुरु जी ने उसी समय बाबा गुरदित्ता जी को स्नान करने के लिए भेज दिया। जब बाबा गुरदित्ता जी स्नान करके आए तो उनका रूप बिल्कुल गुरु नानक देव जी जैसा ही था। साईं बूढन शाह गुरु नानक देव जी वाला वास्तविक रूप देख कर चकित हो गए। बाबा बूढन जी व गुरु हरिगोबिंद साहिब उठ कर खड़े हो गए और कहने लगे, "आओ बाबा जी बैठो।" बाबा बूढन शाह उसी समय दो कटोरे दूध के ले आया। एक कटोरा गुरु हरिगोबिंद साहिब तथा एक बाबा गुरदित्ता जी ने पी लिया।

बाबा बूढन शाह की सारी शंका निवृत्त हो गई। वह जो भी प्रश्न बाबा जी को करता

रहा, उसे उसका यथोचित उत्तर मिलता रहा। अंततः बाबा बूढन शाह की कामना पूर्ण हुई और वह अपने प्राण त्याग गए। मुसलमान फकीर होने के कारण गुरु जी ने उसको कब्र खुदवा कर दफना दिया। उनकी कब्र आज भी बाबा गुरदित्ता जी के डेरे के निकट है।

कीरतपुर में नित्य ही दरबार लगता और प्रातः-सायं दोनों समय कीर्तन होता। संगत की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी। सिखों की गुरु जी के प्रति अथाह श्रद्धा थी। वह उनके एक इशारे पर अपनी जान तक कुर्बान करने को तैयार थे। एक दिन उन्होंने भाई झण्डे को बुलाया। भाई झण्डा लंगर का इंचार्ज था। उन्होंने भाई झण्डे को कहा, "सिखों को कह दो कि जो भी लंगर में लकड़ी लाकर डालेगा, वह आनंदित हो जाएगा।"

भाई झण्डा आदेश पाकर स्वयं ही लकड़ियां एकत्र करने चला गया और सारा दिन लकड़ियां ही एकत्र करता रहा। अगले दिन वह लकड़ियों को लंगर में ढोता रहा। गुरु जी ने जब देखा तो वह कहने लगे, "भाई झण्डे! मैंने तो आप को कहा था कि सिखों को जाकर कहो, लेकिन आप तो स्वयं ही लकड़ियां एकत्र करने लग पड़े। भाई झण्डे ने कहा कि "गुरु जी! आपका आदेश था कि सिखों को कहो; इसलिए पहले मैं स्वयं ही सिख बनने का प्रयत्न कर रहा हूं।"



भाई भैरों

एक बार गुरु जी देश-देशांतर का भ्रमण करते हुए नयना देवी तीर्थ स्थल पर चले गए। उनके साथ उस समय पर्याप्त सिख भी थे। उन्होंने मंदिर से कुछ दूरी पर अपना डेरा लगा लिया। सभी पहाड़ी राजा व अन्य सामान्य जन भी नयना देवी की यात्रा पर दर्शनार्थ आते थे। उन दिनों में वहां पर कोई धार्मिक पर्व होने के कारण काफी श्रद्धालु आए हुए थे। वहां पर चारों ओर तम्बू लगे हुए थे। नयना देवी के मंदिर में काफी चढ़ावा चढ़ता था और मंदिर के पुजारी चढ़ावा एकत्र कर रहे थे।

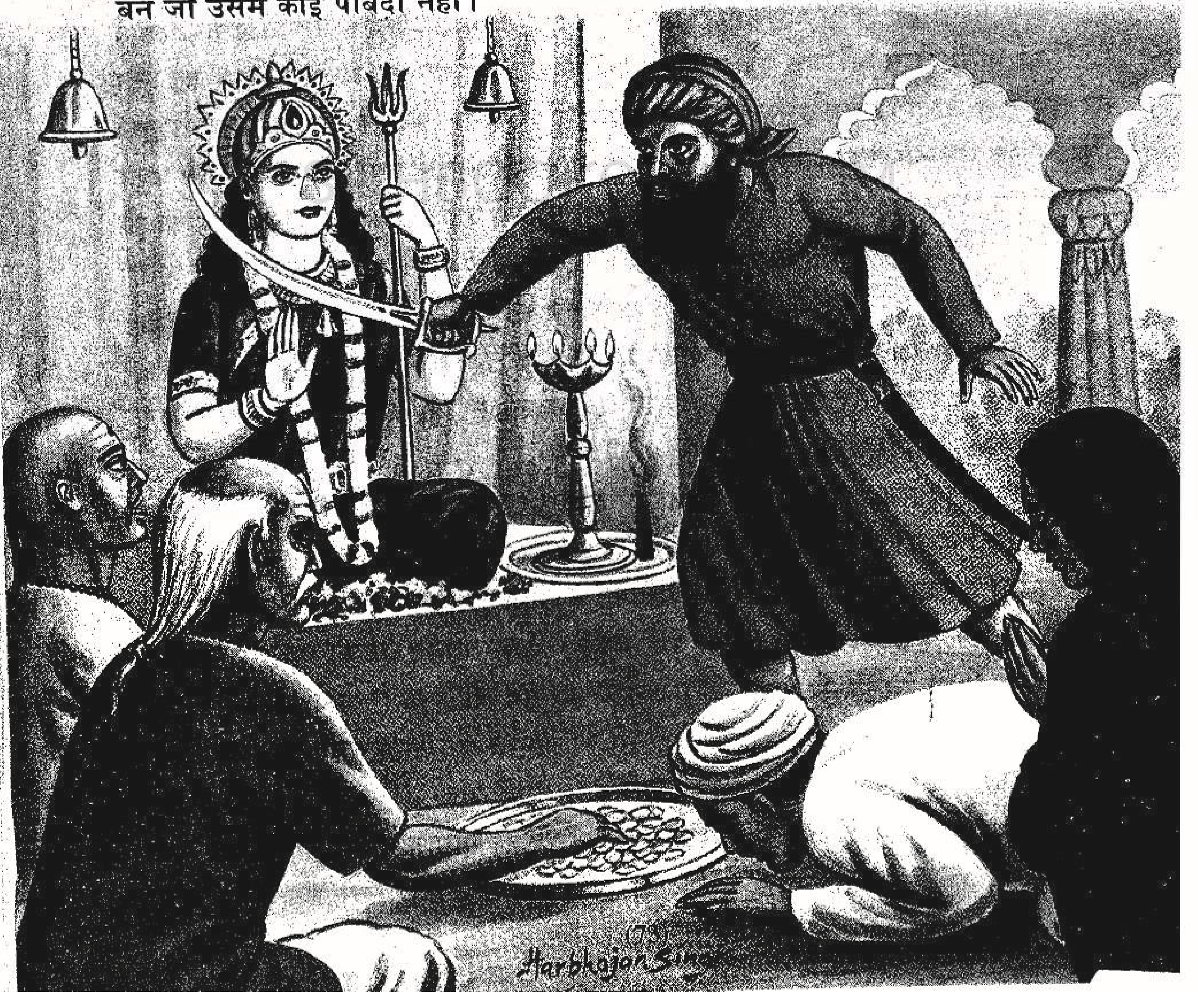
भाई भैरों नामक एक सिख नयना देवी की मूर्ति को देख कर काफी हंसा। लोगों को सुंदर मूर्ति के सामने माथा टेकते देख कर वह प्रसन्न हुआ। उसके मन में पता नहीं क्या ख्याल आया कि वह अपनी जान की परवाह न करता हुआ यात्रियों की भीड़ को चीरता हुआ देवी की मूर्ति के पास पहुंचा। उसने तलवार निकाल कर मूर्ति का हार गले में से उतार लिया। फिर तलवार घुमाता हुआ बचता-बचाता गुरु जी के कैम्प में आ गया। यात्रियों में हाहाकार मच गई। वहां के पहाड़ी राजा के पास शिकायत पहुंच गई। सभी को शंका थी कि हार चुराने वाला चोर गुरु जी के कैम्प में छिपा हुआ है। राजा ने आकर गुरु जी को कहा कि दोषी को हमारे सुपुर्द कर दो। गुरु जी ने कहा, "हमारे सिख न तो झूठ बोलते हैं और न ही डरते हैं, जो भी दोषी होगा वह स्वयं ही सामने आ जाएगा।"

पुजारी दोषी को पहचानता था। इसलिए राजा ने उसे दोषी को पहचानने के लिए कहा। पुजारी ने भाई भैरों को पहचान लिया। भाई भैरों ने कहा, "मैं सज़ा पाने के लिए तैयार हूं, यदि मेरे साथ इन्साफ किया जाए। पहले मुझे यह बताया जाए कि मेरा दोष क्या है?" पुजारी ने कहा, "तूने देवी का हार चुराया है।" भाई भैरों कहने लगा, "पहले मुझे देवी दिखाओ, फिर ही वास्तविकता का पता चलेगा। पुजारी तो जान-बूझ कर अपनी जान बचाने हेतु मुझ पर दोष लगा रहा है।" राजा और पुजारी उसे देवी के मंदिर में ले गए। कुछ सिख भी उनके साथ चल पड़े। मंदिर में जाकर उन्होंने मूर्ति का हार गुम पाया। कई यात्री देवी के गले से हार चोरी हो जाने पर रो रहे थे। भाई भैरों ने कहा कि जिस देवी का हार चोरी हुआ है, उससे पूछ लो कि मैंने उसका हार चुराया है कि नहीं। भाई भैरों देवी की ओर हाथ जोड़ कर खड़ा हो गया और कहने लगा, "हे देवी मां! सत्य बताओ कि मैंने आप का हार चुराया है। बता दो मां, एक बार सत्य बता दो, नहीं तो यह पुजारी मुझ निर्दोष को ही मरवाने लगा है।" उसके इस तरह विनती करने पर सभी यात्री हंसने लगे और वह कहने लगे कि कभी पत्थर भी बोलते हैं। यह तो कोई मूढ़ व्यक्ति ही मालूम होता है। फिर भाई

भैरों राजा को कहने लगा कि मैंने इसे हानि पहुंचाई है अथवा किसी और ने, क्योंकि वास्तविक मुद्दई तो यही है, जिस की हानि हुई है। किसी अन्य का क्या गया है। सभी कहने लगे, "यह मूढ़ है, इसको जाने दो। इसे तो यह भी नहीं पता कि पत्थर की मूर्ति बोलती है कि नहीं।" भाई भैरों कहने लगा, यह तो नहीं पता कि मूर्ख कौन है? लेकिन जो देवी स्वयं को नहीं प्रकट कर सकती, जो अपना न्याय नहीं ले सकती, जो स्वयं को बचा नहीं सकती, वह किसी का भला क्या करेगी?"

सभी यात्री समझ गए कि भाई भैरों मूर्ख नहीं, बल्कि वह सभी मूर्ख हैं जो एक निर्जीव बुत्त की पूजा कर रहे हैं। राजा ने भाई भैरों को दोष मुक्त मान कर छोड़ दिया।

इससे यह प्रमाणित होता है कि गुरु के सिख बुत्त प्रथा का कितना प्रतिरोध करते हैं। जब एक बार एक व्यक्ति हिन्दू धर्म में अनेकों पाबंदियों के कारण मुस्लिम धर्म अपनाने को तैयार हो गया तो उसके मित्र ने कहा कि मुसलमान धर्म में भी 'शरा' की बहुत पाबंदियां हैं, सिख बन जा उसमें कोई पाबंदी नहीं।



सिखों की चौथी जंग

उन्हीं दिनों में (गुरु) तेग़ बहादुर का विवाह निकट आ गया। (गुरु) तेग़ बहादुर की सगाई भाई लाल चंद की पुत्री बीबी गुजरी के साथ निश्चित हुई थी और शादी की तिथि भी निश्चित कर दी थी। इसलिए शादी निकट होने के कारण गुरु जी कीरतपुर से करतारपुर आ गए। मार्च 1632 ई. में उनकी शादी गुरु-मर्यादानुसार हुई।

गुरु जी कुछ समय करतारपुर में ही ठहरे। गुरु जी यह देख रहे थे कि पैंदे खां अपनी मनमर्जी कर रहा था। वह कई बार गुरु जी के आदेश की अवहेलना कर चुका था।

एक बार काबली मल ने एक सफेद बाज, एक घोड़ा, ज़री वाला वस्त्र, एक ढाल, एक रत्न जड़ित मूठ वाली तलवार आदि वस्तुएं गुरु जी को भेंट कीं। गुरु जी ने उसी समय वह बाज़ बाबा गुरदित्ता जी को दे दिया और शेष सभी वस्तुएं पैंदे खां को दे दीं तथा इसके साथ ही आदेश किया कि किसी भी लापरवाही के बिना यह पोशाक पहन कर नित्य दरबार में उपस्थित होना होगा। लेकिन पैंदे खां ने वह पोशाक अपने दामाद को दे दी तथा कई दिन दरबार में न आया। उधर उसके दामाद उस्मान खां ने बाबा गुरदित्ता जी का बाज़ भी चुरा लिया। जब पैंदे खां से बाज़ के बारे में पूछा गया तो उसने इसके बारे में अनभिज्ञता प्रकट की। लेकिन जब उसके घर की तलाशी ली गई तो वहां से बाज़ मिल गया। फिर पैंदे खां को दरबार में उपस्थित होने के लिए कहा गया। दरबार में पेश होकर उसने अपशब्द प्रयोग किए। उसने यहां तक कहा कि गुरु की सम्पूर्ण शक्ति उसके कारण ही है। गुरु जी ने यह सुन कर उसे नौकरी से निकाल दिया। पैंदे खां जालंधर के नवाब के पास गया। अपनी सेवाएं उनके अधीन कर दीं और कहने लगा, "मुझे अब अक्ल आई है, काफिर की सहायता करके मैंने बहुत बड़ी गलती की है।"

सूबेदार कुतुबुद्दीन ने सेवाएं तो ले लीं, लेकिन उसे शाहजहां को मिलने के लिए कहा। काबुल का हाकिम हसन खां तथा लाहौर का हाकिम वजीर खां गुरु जी के श्रद्धालु थे। इसलिए पैंदे खां की बात न बनी, लेकिन पैंदे खां ने शाही फ़ुरमान का बहाना लगा कर काले खां, अनवर खां, ज़फर बेग तथा लल्ला बेग के पुत्र मलिक अनवर खां को साथ ले लिया। ये सभी वह लोग थे, जिनके किसी न किसी संबंधी को गुरु जी ने कत्ल किया था।

गुरु हरिगोबिंद साहिब पैंदे खां की हरकतों को जानते थे। शाही सेना करतारपुर पहुंच गई तथा शहर को घेर लिया। गुरु जी भी मैदान में अपनी सेना सहित आ गए। शाही सेना एक बड़ा आक्रमण करके आगे बढ़ी। गुरु जी ने तीरों की वर्षा कर दी। पैंदे खां ने अपना घोड़ा गुरु जी की ओर बढ़ाया और सामने आ डटा। गुरु जी ने कहा, वार करो। पैंदे खां गुरु

जी की तीरंदाज़ी से डरता था। इसलिए कहने लगा, "तीर कमान छोड़ कर सामना करो।" गुरु जी ने तीर कमान को कंधे पर रख लिया और पैंदे खां ने पूरा ज़ोर लगा कर आक्रमण किया। गुरु जी ने यह वार रकाब से ही रोक लिया। अगला वार पैंदे खां ने इतनी शक्ति से किया कि उसकी तलवार ही टूट गई। पैंदे खां ने अब सोचा कि गुरु का घोड़ा ही अब उल्टा दिया जाए। वह गुरु जी के घोड़े के नीचे हो गया। उसने घोड़ा उठाने का यत्न किया, लेकिन उठा न सका। तलवार उस पर चलानी कठिन थी, इसलिए गुरु जी ने पांव रकाब पर रख कर ढाल उसके सिर पर मार दी। वह बेहोश होकर गिर पड़ा। गुरु जी घोड़े पर से उतरे और पैंदे खां को ढाल की छाया करते हुए बोले, "पैंदे खां! कलाम पढ़, अंतिम समय आ गया है।"

पैंदे खां धीरे से बोला, "आप की कृपा ही मेरा कलाम है।" यह कह कर वह चिर निद्रा में लीन हो गया। पैंदे खां के दामाद को जब पता चला कि पैंदे खां मारा गया है तो वह गुरु जी की ओर दौड़ा। बाबा गुरदित्ता जी ने उसे एक ही तीर से निर्जीव कर दिया। कुतुब खां व गुरु जी की जंग पैदल ही हुई। गुरु जी ने एक ही वार से उसे भी समाप्त कर दिया। काले खां ने तीन वार किए, जो गुरु जी ने अपनी ढाल पर रोक लिए। फिर गुरु जी ने कहा, 'खां'! तलवार ऐसे नहीं, इस प्रकार चलाते हैं तथा आंख की झपकी में ही उसका शीश तन से अलग हो गया। इस प्रकार चौथी जंग में भी सिखों ने विजय प्राप्त कर ली।



बाबा गुरदित्ता जी

बाबा गुरदित्ता ज़ी का जन्म 8 कार्तिक, सम्वत् 1670 विक्रमी गांव डरौली में माता दामोदरी जी के उदर से हुआ। आप गुरु हरिगोबिंद साहिब के ज्येष्ठ पुत्र थे, इसलिए उन्हें टिक्का साहिब भी कहा जाता था। उनका स्वरूप गुरु नानक देव जी के साथ मिलता था। वह हर समय गुरु साहिब के कार्यों में सहायता करते थे और शेष समय सेवा-सिमरन में व्यतीत करते। उनकी सेवा भावना दूसरों को भी आकर्षित करती थी। भाई रामा जी आप को बहुत पसंद करते थे तथा अपनी लड़की का विवाह गुरदित्ता जी से करना चाहते थे। सर्वज्ञ गुरु हरिगोबिंद साहिब भाई रामा के हृदय की बात समझते थे और एक दिन उन्होंने भाई रामा को अपने पास बुला कर कहा, "भाई रामा जी! जिसके पास सिखी है, वह कभी निर्धन नहीं होता। हमें तुम्हारी कन्या का विवाह-संबंध स्वीकार है। कुछ दिनों के पश्चात् ही शादी की तारीख निश्चित हो गई। भाई गुरदित्ता का विवाह बटाला में हो गया। उनके घर दो पुत्रों ने जन्म लिया। ज्येष्ठ धीरमल तथा अनुज (गुरु) हरि राय जी थे।

एक बार जब श्री गुरु हरिगोबिंद साहिब जी, श्री गुरदित्ता जी व सूरज मल को साथ लेकर गांव बाठ में बाबा श्रीचंद जी को मिलने गए तो श्रीचंद जी ने श्री गुरदित्ता जी को अपना पुत्र बना लिया तथा उदासीन सम्प्रदाय का अध्यक्ष नियुक्त किया। इस तरह उदासीन सम्प्रदाय भी गुरु-घर में सम्मिलित हो गया। गुरु हरिगोबिंद साहिब ने बाबा गुरदित्ता जी को कीरतपुर नगर बसाने का दायित्व सौंपा। आप ने कड़े परिश्रम से कीरतपुर शहर का निर्माण किया। आप एक कुशल योद्धा व प्रत्येक शस्त्र चलाने में निपुण थे। करतारपुर के युद्ध में आप ने अपनी वीरता का खूब प्रदर्शन किया। पैंदे खां के मारे जाने के पश्चात् जब उसका दामाद भाग कर गुरु जी पर आक्रमण करने आया तो बाबा गुरदित्ता जी ने उसे एक ही तीर से मृत्यु-लोक में पहुंचा दिया। करतारपुर के युद्ध के पश्चात् आप कीरतपुर में रहने लगे।

एक दिन बाबा गुरदित्ता जी अपने कुछ साथियों सहित जंगल में शिकार खेलने गए। उनके एक साथी के हाथों मृग के भ्रम में एक गाय की मृत्यु हो गई। गाय के स्वामी को पता चला तो वह विलाप करने लगा। जब उसे गाय की कीमत देने लगे तो उसने कीमत लेने से इन्कार कर दिया। उसने इस बात पर बल दिया कि उसी गाय को जीवित किया जाए। बाबा गुरदित्ता जी को दया आ गई और उन्होंने गुरु-मंत्र पढ़ कर गाय को जीवित कर दिया।

गाय को जीवित करने की बात गुरु हरिगोबिंद साहिब के पास पहुंच गई। इस घटना के बारे में सुन कर हरिगोबिंद साहिब बहुत नाराज़ हुए और उन्होंने बाबा गुरदित्ता जी को अपने पास बुलाया तथा कहने लगे, "तुम अब ईश्वर के शरीक बन गए हो, जन्म व मृत्यु

परमात्मा के हाथ में है, तुम मरे हुए को जीवित करने वाले कौन होते हो?"

गुरु साहिब की नाराज़गी बाबा गुरदित्ता जी से सहन न हुई। वह बाबा बूढन शाह की कब्र के पास गए तथा समाधि स्थित होकर बैठ गए। वहां बैठे-बैठे उन्होंने अपने ऐसे श्वास चढ़ाए कि प्रभु में ही समा गए। जब गुरु जी को इस बात का पता चला तो उन्हें बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने अपने सिखों को धीरमल से गुरु ग्रंथ साहिब लाने हेतु भेजा, लेकिन न तो धीरमल आया और न ही उसने गुरु ग्रंथ साहिब दिया। यह सुन कर गुरु जी ने कहा कि धीरमल उस ग्रंथ साहिब का गर्व करता है। यह (गुरु) ग्रंथ साहिब घर-घर होंगे।

गुरु जी पांच ग्रंथी का पाठ करवाते रहे तथा सप्तमी वाले दिन भोग उपरांत गुरु हरि राय साहिब को दसतार बंधवा दी।



ज्योति ज्योत समाना

जब बाबा गुरदित्ता जी स्वर्ग सिधार गए तो धीरमल स्वयं को बाबा गुरदित्ता का ज्येष्ठ पुत्र समझ कर गुरुगद्दी का अधिकारी समझने लगा। लेकिन गुरु हरिगोबिंद साहिब द्वारा उसे गुरुगद्दी मिलने की आशा नहीं थी, इसलिए वह हुकूमत के बल से गुरुगद्दी लेना चाहता था। इस कार्य हेतु वह शाहजहां को मिला। लेकिन जब गुरु हरिगोबिंद साहिब को धीरमल के इस षड़यंत्र का पता चला तो उन्होंने सहज स्वभाव में कह दिया, "धीरमल पृथिए का अवतार है।" धीरमल की चतुराइयों को देख कर प्रत्येक व्यक्ति समझता था कि गुरु जी गुरुगद्दी का उत्तराधिकारी किसी और को नियुक्त करेंगे। गुरु हरिगोबिंद साहिब बाबा गुरदित्ता जी के छोटे पुत्र हरिराय जी से बहुत स्नेह करते थे। उसे अपने साथ हर पल रखते थे। स्वयं ही उसे शस्त्र चलाना सिखाते थे। (गुरु) हरि राय जी भी बड़े कोमल स्वभाव के थे और वह अपना अधिकतर समय गुरुबाणी पढ़ने-सुनने में व्यतीत करते थे।

जब गुरुगद्दी देने का समय आया तो उन्होंने अपने पुत्रों की बजाय अपने पोत्रे (गुरु) हरिराय जी को इस कार्य हेतु योग्य समझा। गुरु हरिगोबिंद जी ने अगस्त 1643 को उन्हें गुरुगद्दी पर बिठा दिया। उन्होंने विशेष सिखों व मसंदों को संदेश भेज कर पहले ही बुला लिया था। वे भरी संगत सभा में उनके समक्ष पांच पैसे, नारियल तथा पोथी रख कर नतमस्तक हुए और परिक्रमा की। बाबा भाना जी ने उन्हें तिलक लगा कर गुरु होने की मोहर लगा दी। फिर गुरु हरिगोबिंद जी ने संगत को सम्बोधित करते हुए कहा, "गुरु हरिराय को मेरा ही रूप समझना। गुरु रूप नहीं, बल्कि ज्योति होती है। आज से गुरु की ज्योति इनमें समा गई है। फिर उन्होंने गुरु हरिराय साहिब के आगे मस्तक झुकाया, तदुपरांत सूरज मल, अणी राय व (गुरु) तेग़ बहादुर सभी नतमस्तक हुए। किसी ने भी कोई विरोधता नहीं की। तत्पश्चात् समस्त संगत ने उनके चरणों में शीश झुकाया।

गुरुगद्दी का दायित्व सौंप कर आप अपना अधिकतर समय पाठ करते और कीर्तन श्रवण करने में ही लगाते थे। आप नित्य अपना दीवान सतलुज दरिया के तट पर लगाते थे। जब ज्योति-ज्योत समाने का समय निकट आया तो हर समय यही प्रेरणा करते कि "किसी ने भी मेरे मरणोपरांत रोना नहीं, किसी प्रकार का शोक नहीं करना, केवल वाहिगुरु पर ही निश्चय करना है।" एक दिन आप गुरुबाणी सुन कर शबद के भोग उपरांत एकांत में चले गए। रागियों को कीर्तन करने के लिए कहा। कीर्तन सुनते-सुनते ही आप ज्योति-ज्योत समा गए। वह दिन 3 मार्च 1644 ई. का था।



गुरु हरिराय साहिब जी

प्रारम्भिक ज़ीवन

गुरु हरिराय साहिब जी का जन्म माघ शुदि 13 सम्वत् 1687 अनुसार 30 जनवरी 1630 ई. को कीरतपुर नगर में हुआ। आप के पिता बाबा गुरदित्ता जी थे। गुरु हरिगोबिंद साहिब के पांच साहिबज़ादे थे। उनमें से ज्येष्ठ बाबा गुरदित्ता जी थे। उनके दो पुत्र थे, ज्येष्ठ पुत्र बाबा धीरमल जी थे।

जब (गुरु) हरिराय जी ने अवतार धारण किया तो गुरु हरिगोबिंद जी उस समय अमृतसर में थे। आप को जब बालक के जन्म का समाचार दिया गया तो आप बहुत प्रसन्न हुए और प्रसन्नता में कहने लगे, "बड़ी चीज़ का ग्राहक आया है।"

गुरु हरिगोबिंद साहिब कुछ दिनों के पश्चात् ही कीरतपुर साहिब पहुंच गए। वह इतने प्रसन्न थे कि मार्ग में संगत को आनंदित करते और निर्धनों को धन बांटते जा रहे थे।

कीरतपुर पहुंच कर वह पहले बालक के कक्ष में गए। वह काफी समय तक बालक के सुंदर चेहरे को निहारते रहे। फिर उन्होंने बालक को गोद में उठा लिया तथा लोरी देते हुए कई वर दिए। उन्होंने कहा, "यह बालक स्वयं हरि का रूप है। इसलिए इसका नाम भी हरिराय ही रखा जाए।" बालक को वर देते हुए उन्होंने कहा, "यह बालक इस संसार में धरती का बोझ कम करने आया है।" माता राज कौर गुरु हरिगोबिंद साहिब की ये बातें सुन कर बहुत खुश हुई। बाबा गुरदित्ता जी तो बालक के रूहानी चेहरे को देख-देख कर आनंदित हो रहे थे।

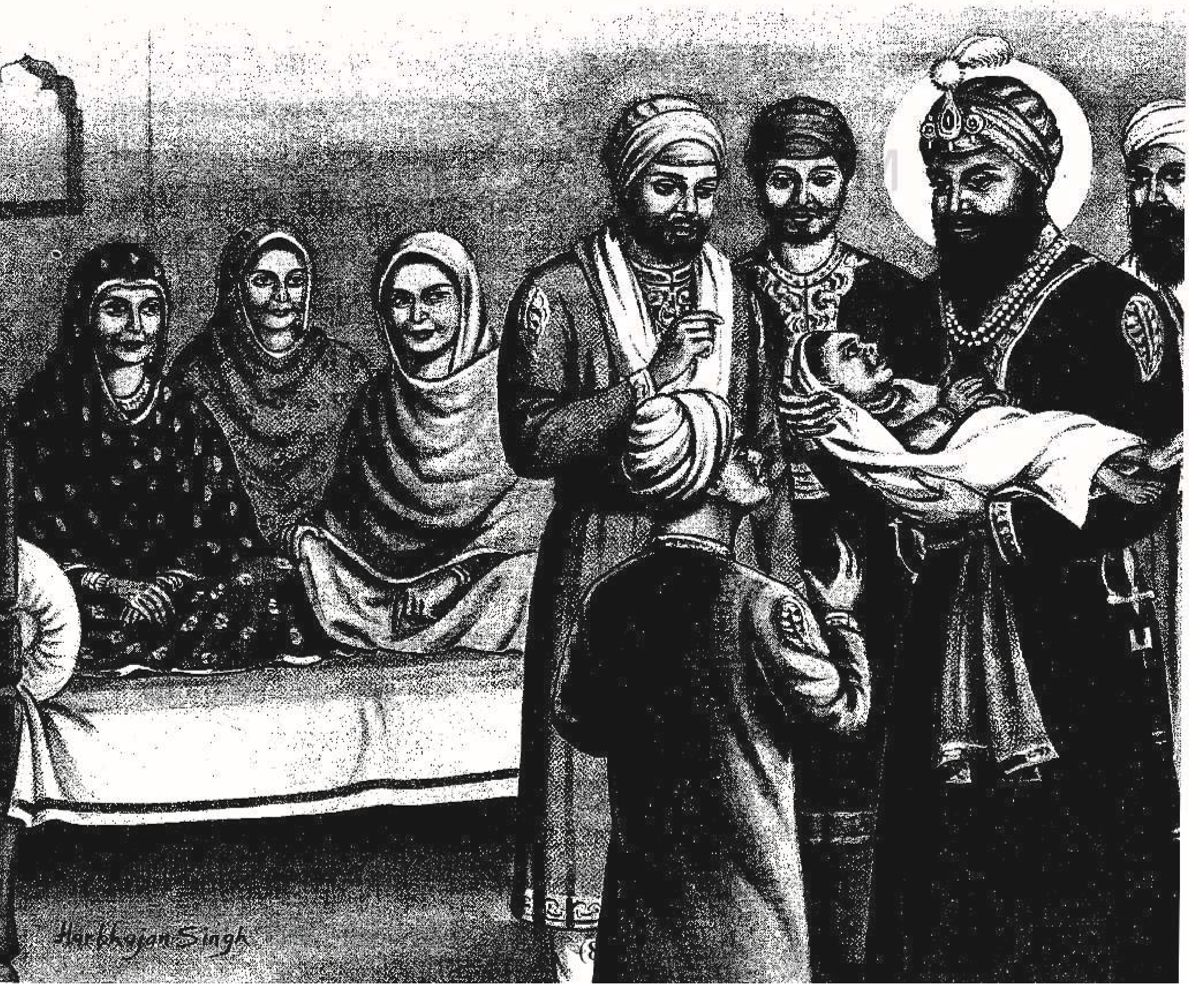
बालक के प्रेम में मोहित गुरु जी दो महीने कीरतपुर में ही ठहरे। दूर-दूर से श्रद्धालुजन बधाई देने आते, नित्य सत्संग होता तथा गुरु का अटूट लंगर चलता रहता। दो माह कीरतपुर में ठहर कर गुरु हरिगोबिंद साहिब डरोली चले गए।

बाबा गुरदित्ता जी बालक का पालन-पोषण बहुत ही प्रेम से कर रहे थे। वह जहां कीरतपुर नगर को सुन्दर बनाने में लगे हुए थे, वहां बालक (गुरु) हरि राय साहिब की ओर भी ध्यान दे रहे थे।

लेकिन जब बालक गुरु जी चार वर्ष के हुए तो एक बड़ी दुर्घटना घटित हो गई। बाबा गुरदित्ता जी पहाड़ों में सिखी का प्रचार कर रहे थे। लोगों में वीरता उत्पन्न करने हेतु वे नित्य जंगल में शिकार खेलने जाते थे। एक दिन जब वह शिकार खेलने गए तो उनके एक साथी की बंदूक चलने से एक गाय मारी गई। इस गाय का मालिक बहुत गरीब था। वह मृत गाय को देख कर विलाप करने लगा। बाबा गुरदित्ता जी बहुत ही कोमल स्वभाव के स्वामी थे, उनसे उस व्यक्ति का दुख सहन न हुआ। उन्होंने अपनी आत्मिक शक्ति द्वारा गाय को

जीवित कर दिया। बाबा जी के इस चमत्कार को देख कर उनके साथी सिख बहुत खुश हुए। इतनी खुशी वाली बात वह गुरु हरिगोबिंद साहिब को क्यों न सुनाते। उन्होंने जो कुछ देखा था, वह सब कुछ बड़ी प्रसन्नता से उन्हें सुनाया। लेकिन गुरु जी उनकी यह बात सुन कर खुश न हुए। उन्होंने उसी समय बाबा गुरदित्ता जी को बुलाया और कहा, "यह आप ने क्या किया है? आप परमात्मा के शरीक कैसे बन गए हो? किसी को मारना अथवा जीवित करना प्रभु के हाथ में है। चमत्कार अत्याचार का नाम है।" बाबा गुरदित्ता जी ने गुरु जी के जब ये वचन सुने तो वह बहुत दुखी हुए। वह किसी को बताए बिना ही बूढन शाह की समाधि के निकट जाकर बैठ गए और बाबा अटल राय जी की भांति श्वास चढ़ा गए।

गुरु जी को जब इसके बारे में पता चला तो उन्होंने वाहिगुरु के समक्ष अरदास की और समस्त परिवार को ईश्वर का आदेश मानने की प्रेरणा दी। (गुरु) हरिराय साहिब जी उस समय चार वर्ष के थे। उन्होंने इस सारी घटना को बड़े ध्यान से देखा और विचारा।



बाबा धीरमल

बालक गुरु हरिराय के ज्येष्ठ भ्राता बाबा धीरमल था। बाबा धीरमल का जन्म जनवरी 1626 ई. को हुआ। उसकी माता राज कौर ने जब पुत्र की कामना की तो गुरु हरिगोबिंद साहिब ने फुरमाया कि सतिनाम-वाहिगुरु का जाप करते रहो। लेकिन कहा जाता है कि माता राज कौर माया में ही लिप्त रहीं। इसलिए जब धीरमल पैदा हुआ तो वह जन्म से ही बड़े चंचल, चतुर व लोभी स्वभाव का हुआ। जब हरिगोबिंद साहिब को अपने पोत्रे के जन्म का पता चला तो वह करतारपुर में आए। अपने पोत्रे को देखते ही उन्होंने सहज स्वभाव में कह दिया, "यह तो पृथी चंद मेरे ताया जी का ही रूप धारण करके आ गया है।" बालक की चंचलता देख कर उसका नाम धीरमल रख दिया ताकि उसमें धैर्य आ सके।

गुरु साहिब के वचन तब सत्य प्रमाणित हुए, जब वह बड़ा होकर कपटी व लोभी स्वभाव का निकला।

बड़ा होकर वह करतारपुर में ही बस गया और शहज़ादों वाली ठाट-बाठ में रहने लगा। वह किसी की भी परवाह नहीं करता था। जब बाबा गुरदित्ता जी कीरतपुर में अपने श्वास चढ़ा गए तो बाबा धीरमल जी को इस दुखदायी समय में उपस्थित होने के लिए संदेश भेजा गया, लेकिन वह वहां पर न आए। अंततः उनकी अनुपस्थिति में ही बाबा गुरदित्ता जी का अंतिम संस्कार कर दिया। उसे पोथी साहिब भेजने हेतु भी कहा गया, किन्तु उसने न तो पोथी साहिब ही भेजा और न ही स्वयं आया। तत्पश्चात वह स्थायी तौर पर करतारपुर में ही ठहर गया। उनके पास भाई गुरदास जी का हस्तलिखित असली ग्रंथ साहिब मौजूद होने के कारण चढ़ावा भी बहुत चढ़ता था और करतारपुर की एक बड़ी जागीर भी उसके पास थी।

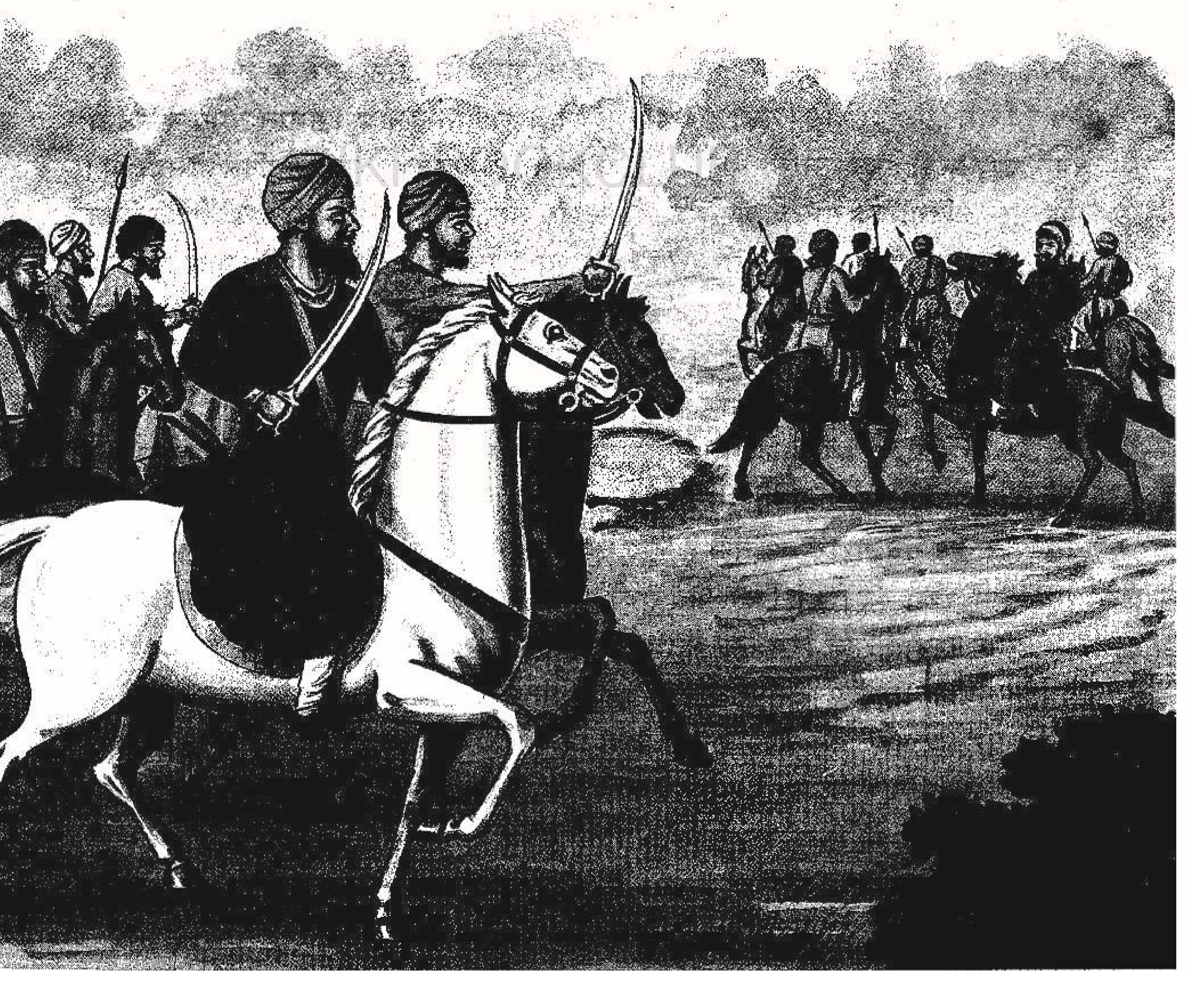
गुरु हरिगोबिंद साहिब उसके व्यवहार को देख रहे थे। उन्होंने अंततः निर्णय किया कि गुरुगद्दी गुरु हरिराय साहिब को सौंप दी जाए। जब उन्होंने गुरुगद्दी का दायित्व गुरु हरिराय जी को दे दिया तो बाबा धीरमल ने शाहजहां के पास शिकायत की। शाहजहां ने गुरुगद्दी के संबंध में हस्तक्षेप करना उचित न समझा, लेकिन बाबा धीरमल को अपना दरबारी बना लिया। करतारपुर के क्षेत्र की सारी भूमि का पट्टा भी इसके नाम ही कर दिया।

तदुपरांत जब गुरु हरिकृष्ण साहिब दिल्ली में ज्योति-ज्योत समा गए और गुरुगद्दी के बारे में वह 'बाबा बकाला' कह गए तो उसने उचित अवसर जान कर बकाला में जाकर डेरे लगा लिए और प्रचार कर दिया कि गुरु हरिकृष्ण जी उसे ही गुरुगद्दी सौंप गए हैं।

उसको देख कर अन्य गुरु-घर के निकट संबंधी सोढियों ने भी गुरु होने का दावा पेश कर दिया। लेकिन अंत में मक्खन शाह लुबाना ने वास्तविक गुरु तेग़ बहादुर जी को ढूंढ लिया

और ढिंढोरा पिटवा दिया कि सभी गुरु पाखण्डी हैं, सत्य गुरु तेग़ बहादुर जी हैं।

इस घटना ने धीरमल को झिंझोड़ कर रख दिया और अपना धैर्य खो बैठा। उसने अपने मसंदों की सहायता से गुरु तेग़ बहादुर जी पर आक्रमण कर दिया और उन पर गोली भी चलाई। उनके घर से सारा सामान लूट लिया। जब मक्खन शाह लुबाने को इस घटना का पता चला तो उसने अपने साथियों की सहायता से लूटा हुआ माल वापिस करवाया। जब बाबा धीरमल की वहां एक न चली तो वह वापिस करतारपुर लौट आया। वह करतारपुर में स्वयं को गुरु ही कहलाता तथा दूर-दूर मसंद भेज कर माया एकत्र करता रहा। जब औरंगज़ेब हिन्दुस्तान का शासक बना तो उसने इसे बंदी बना कर 25 जनवरी, 1677 को समाप्त कर दिया।



गुरयाई

गुरु हरिगोबिंद साहिब बालक (गुरु) हरिराय साहिब को प्राय: अपने साथ ही रखते थे। वे जहां भी जाते, उनको अपने साथ लेकर जाते, इस तरह (गुरु) हरिराय जी सरलता से ही वे सभी गुण ग्रहण कर रहे थे, जो गुरु हरिगोबिंद साहिब जी में थे।

जब गुरु हरिगोबिंद साहिब ने देखा कि बाबा धीरमल लोभी व चतुर व्यक्ति है, तब वह समझ गए थे कि वह गुरुगद्दी के योग्य नहीं है। तब उन्होंने यह मन बना लिया कि गुरयाई का दायित्व (गुरु) हरिराय जी को सौंपा जाए।

जब उन्हें यह अनुभव हुआ कि उनका प्रभु में विलीन होने का समय निकट आ रहा है तो आप ने समस्त संगत को कीरतपुर पहुंचने का आदेश भेजा। होली के दिन थे, संगत उत्साह से कीरतपुर की ओर आ रही थी। तीन दिन कीर्तन प्रवाह चलता रहा।

चौथे दिन जब दरबार लगा तो कीर्तन की समाप्ति के पश्चात् गुरु जी ने संगत को उपदेश दिया और उन्होंने (गुरु) हरिराय जी को गुरुगद्दी प्रदान करने के अपने आशय को स्पष्ट किया। फिर उन्होंने (गुरु) हरिराय जी को अपने पास बुलाया। समस्त संगत ने उनकी ओर बड़े प्रेम से देखा। उनके रुहानी चेहरे की शोभा को देख कर संगत आनंदित हो रही थी। फिर गुरु हरिगोबिंद साहिब अपने आसन से उठे और तख्त पर गुरु हरिराय जी को बिठा कर उनके समक्ष पांच पैसे व नारियल रख कर माथा टेका तथा परिक्रमा की। बाबा बुड्ढा जी के पोत्रे बाबा भाना जी ने उनके मस्तिष्क पर केसर का तिलक लगा कर माथा टेका। फिर समस्त संगत ने गुरु जी के चरणों में माथा टेका। बाबा अणी राय, बाबा सूरज मल व (गुरु) तेग़ बहादुर जी ने भी बड़े सम्मान के साथ माथा टेका।

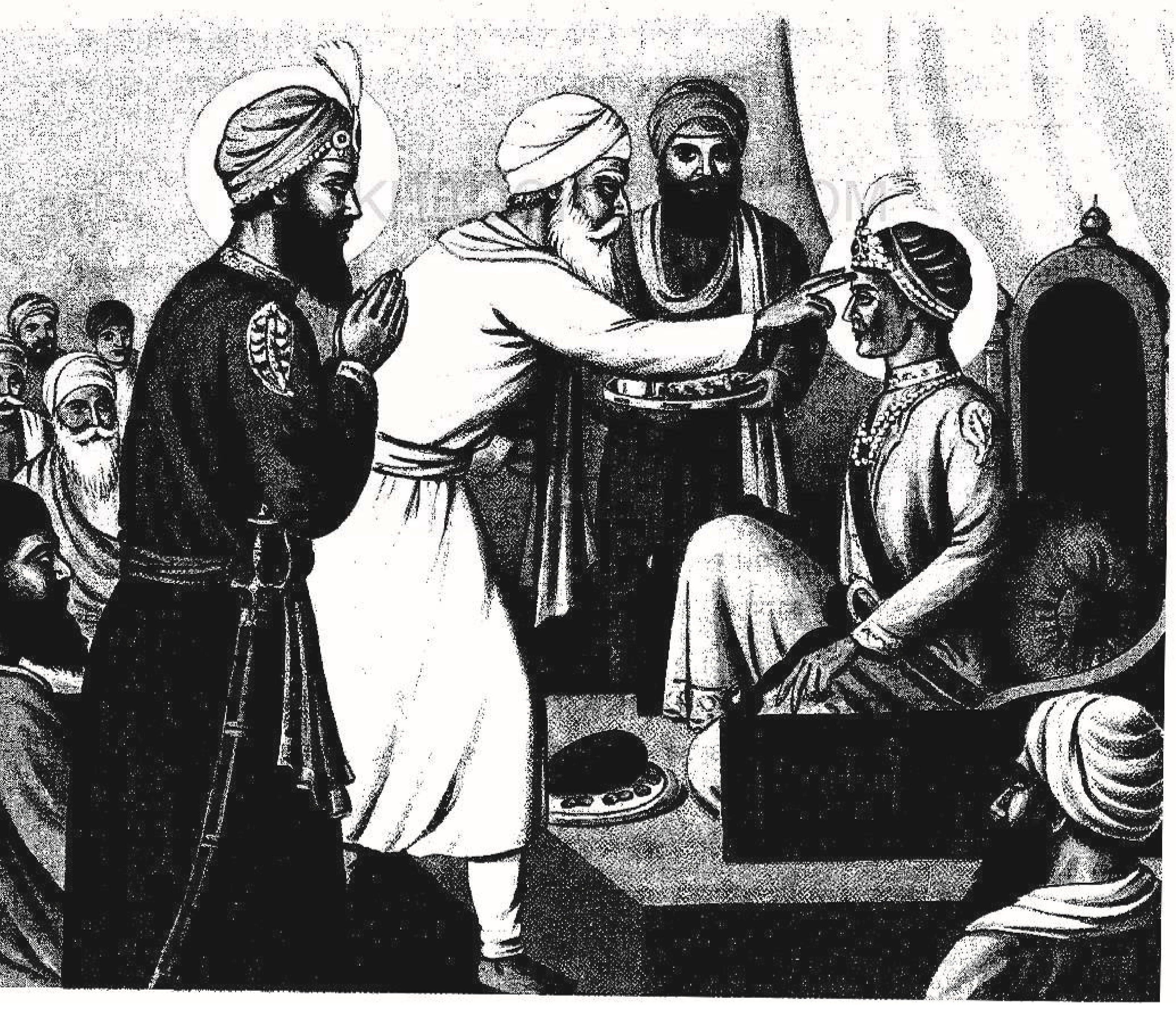
गुरु हरिगोबिंद साहिब अब सारा दिन पाठ करते तथा प्रभु में लिवलीन रहते। एक दिन गुरु जी ने समस्त संगत को अपने ज्योति-ज्योत समाने के बारे में बताया। गुरु जी ने उन्हें समझाया कि गुरु शरीर रूप नहीं है, गुरु एक आत्मा है और यह आत्मा अब गुरु हरिराय साहिब में प्रवेश कर गई है। वही अब सच्चे पातशाह हैं और वही आपका मार्गदर्शन करेंगे।

इसके पश्चात् सात दिन तक अंतर्ध्यान रह कर गुरु हरिगोबिंद जी 3 मार्च 1644 को ज्योति-ज्योत समा गए। उनका अंतिम संस्कार पातालपुरी में चंदन की चिता बना कर किया गया। दूर-दूर की संगत को जब पता चला कि गुरु हरिगोबिंद साहिब ज्योति-ज्योत समा गए हैं और उनके स्थान पर गुरु हरिराय साहिब जी विद्यमान हैं तो वह दर्शनार्थ वहां आने लगी। कीरतपुर में रौनक बढ़ने लगी। गुरु साहिब का दरबार विलक्षण था। जब आप दरबार लगाते तो साथ ही साथ नगारा भी बजता रहता था। 2200 सवार सुचेत अवस्था

में दीवान में सुशोभित होते थे। सिख संगत सिरोपे लेकर गुरु जी के दर्शन करने आती। गुरु जी प्रत्येक सिख को सिरोपा भेंट करते। कई विदेशी सिख घोड़े लेकर उपस्थित होते।

कई माता-पिता अपने युवा पुत्रों को गुरु-घर की सेवा हेतु अर्पित कर जाते। गुरु जी का यश इतना बढ़ गया था कि मुसलमान फकीर भी उनके दर्शनार्थ आते। गुरु जी के वचन सुन कर उनकी संतुष्टि हो जाती।

कई राजा, जो अभिमान वश प्रजा पर अत्याचार करते थे, गुरु जी उन्हें भी समझाते कि राजा होकर किसी को प्रताड़ित नहीं करना चाहिए। प्रभु का सिमरन करो तथा उसके आदेश का पालन करते हुए उसकी कृपा के पात्र बनो।



दारा शिकोह

गुरु हरिराय साहिब जहां नाम-दान प्रदान करके सिखों में आत्मिक शांति बांट रहे थे, वहां उन्होंने सिखों को शारीरिक तौर पर आरोग्य रखने हेतु एक विशाल औषधालय भी खोला हुआ था। उन्होंने अपने औषधालय में कई निपुण वैद्य व हकीम रखे हुए थे। इन वैद्यों व हकीमों के परामर्श से ही वहां पर प्रत्येक औषधि उपलब्ध थी। प्रत्येक व्यक्ति का किसी भेदभाव के बिना वहां उपचार होता था। उन्होंने ऐसी औषधि भी तैयार करवाई जो भारत में कहीं भी उपलब्ध नहीं थी।

इतिहासकार लिखते हैं कि शाहजहां अपने ज्येष्ठ पुत्र दारा शिकोह को बहुत प्यार करते थे। लेकिन उनके इस स्नेह को उनका छोटा पुत्र औरंगज़ेब सहन नहीं करता था। उसने रसोइये से मिल कर दारा शिकोह के खाने में शेर की मूंछ के बाल डाल दिए। दारा शिकोह को क्या पता था कि उसका कपटी भाई उसके साथ क्या द्रोह कर रहा है। जब उसने खाना खाया तो बीमार पड़ गया। पेट में हर समय पीड़ा रहने लगी तथा दारा शिकोह पीड़ा के मारे तड़पने लगा।

जब शाहजहां को इस बात का पता चला तो उसने देश के समस्त उच्चस्थ वैद्यों व हकीमों को बुलाया। लेकिन उपचार में सभी निष्फल रहे। अंततः शाही वैद्यों ने कहा कि इस रोग का उपचार केवल गुरु हरिराय साहिब के औषधालय में ही उपलब्ध है। किसी को भेज कर वहां से औषधि मंगवा ली जाए। लेकिन शाही वैद्यों की बात सुन कर राजा कुछ झिझक गया। वह कहने लगा, "जिन पर अब तक मैं अपनी सेना द्वारा आक्रमण करवाता रहा हूं, वे अब मुझे औषधि कैसे देंगे? फिर मैं एक बादशाह हूं वह एक मामूली दरवेश है, उनसे औषधि मांगने में मेरा अपमान होगा।".

लेकिन पीर हसन अली और शेख अबू गंगोही ने समझाया कि गुरु नानक के घर में कोई भेदभाव नहीं है। उनके औषधालय में प्रत्येक धर्म के व्यक्ति को औषधि प्रदान की जाती है। आपको ऐसा करने में अपमान नहीं समझना चाहिए। फकीर लोग कभी किसी के साथ वैर-विरोध नहीं रखते।

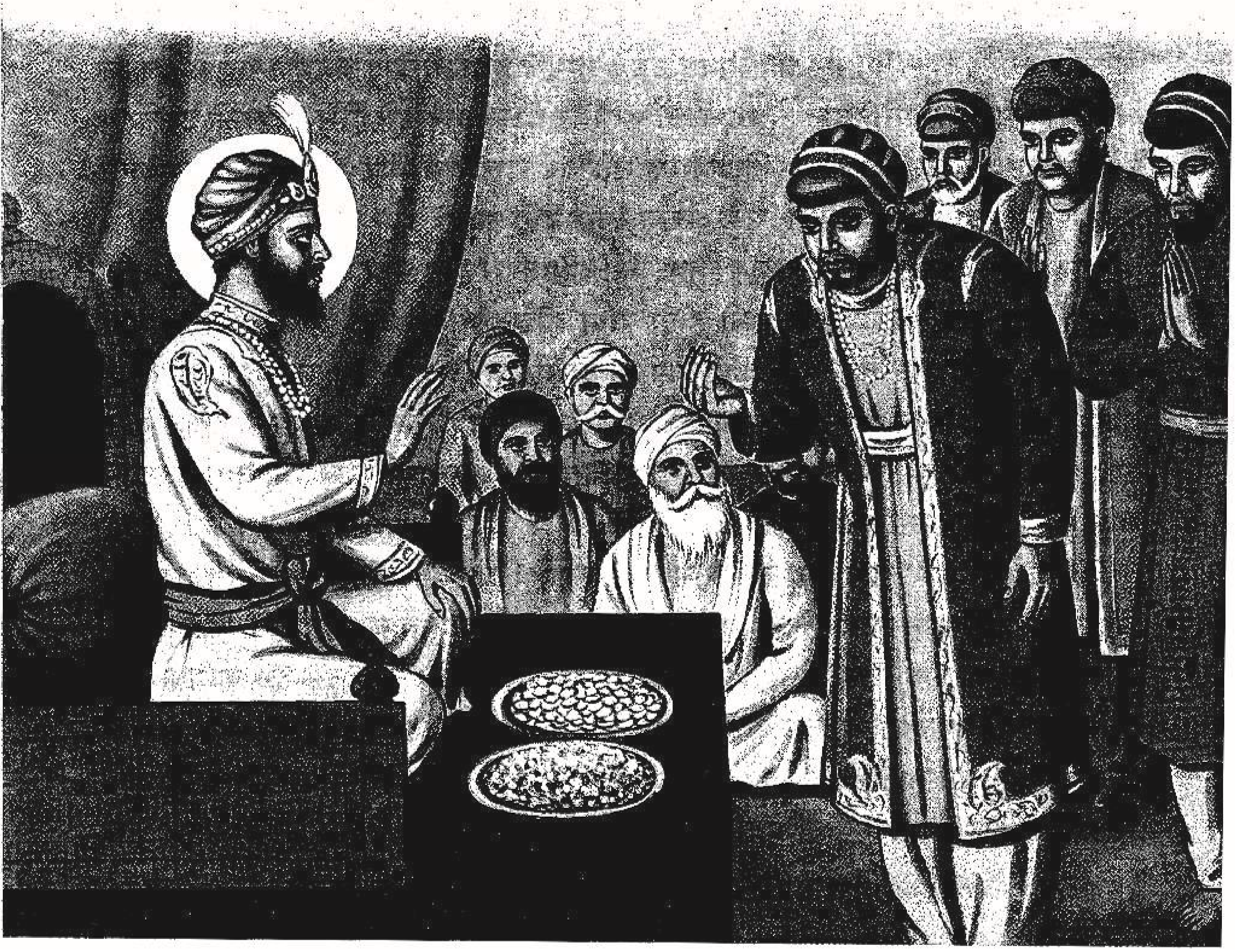
पीर का कहना मान कर बादशाह शाहजहां ने बड़े सम्मान के साथ एक पत्र गुरु हरिराय जी को लिखा। यह पत्र उन्होंने अपने दो विश्वसनीय व्यक्तियों आकल खां व गुल बेग खां के माध्यम से वहां भेजा।

वे दोनों व्यक्ति तीव्रगामी घोड़ों पर सवार होकर अगले दिन कीरतपुर पहुंच गए। गुरु जी को जब उनके आने का प्रयोजन पता चला तो उन्होंने उनका सम्मान किया और अपने

सेवकों को उनकी सेवा में स्थापित कर दिया। गुरु-घर की शानो-शौकत देख कर वे दोनों शाही व्यक्ति बहुत प्रभावित हुए। गुरु का लंगर ग्रहण करके वे बहुत प्रसन्न हुए।

गुरु जी ने उसी समय अपने वैद्यों को बुलाया और उन्हें तुरंत संबंधित औषधि देने का आदेश दिया। वैद्यों ने उन्हें औषधि प्रदान की और वे वापिस लौट आए।

दारा शिकोह को जब औषधि दी गई तो वह कुछ दिनों में ही स्वस्थ हो गया। जब वह पूरी तरह रोगहीन हो गया तो वह गुरु जी का धन्यवाद करने हेतु अमूल्य उपहार लेकर कीरतपुर पहुंच गया। उसने गुरु साहिब की स्तुति में एक कविता भी लिखी। गुरु साहिब के समक्ष उपस्थित होकर उसने अमूल्य उपहार भेंट किए और झुक कर प्रणाम किया। उसने गुरु जी का हृदय से धन्यवाद किया कि उनके ही प्रताप से उसे जीवन दान मिला है। गुरु जी ने कहा, "जीवन व मृत्यु तो अल्लाह के हाथ में है। वह जिस पर कृपा करता है, उसको कोई नहीं मार सकता। केवल उस एक का ही आश्रय लो।" दारा शिकोह कुछ दिन गुरु जी के पास ठहर कर वापिस दिल्ली आ गया।



भाई भक्त भगवान

गुरु जी ने सिखी के प्रचार हेतु बहुत परिश्रम किया। सिखी के प्रचार हेतु गुरु अमरदास जी ने पृथक-पृथक स्थानों पर बाई मंजिएं स्थापित की थीं। ये मसंद प्रचार भी करते थे और गुरु-घर के लिए सिखों से दशवंध भी एकत्र करते थे। इस दशवंध द्वारा आम निर्धनों की सहायता की जाती थी। कोई बीमारी पड़ जाने अथवा भुखमरी के समय गुरु की गोलक दुखियों को ढांढ़स देती थी। लेकिन तदुपरांत इन मसंदों में भी त्रुटियां उत्पन्न हो गई थीं। वे समस्त एकत्र की हुई माया गुरु-घर तक नहीं पहुंचाते थे। इनमें कपट प्रवेश कर गया था।

गुरु हरिराय साहिब ने प्रचार में तीव्रता लाते हुए कई नए उत्साहित मसंद व प्रचारक नियुक्त किए। उन मसंदों में भक्त भगवान व भाई फेरू नामक बहुत ही विख्यात हुए।

भक्त भगवान गया जी का एक संन्यासी महंत था। गया जी में इसका एक भव्य डेरा था, जिसकी आगे 360 शाखाएं थीं। भगवान जिसका प्रथम नाम भगवान गिर था, एक बार कीरतपुर आया। वहां पर वह गुरु हरिराय साहिब के दर्शन करके कृतज्ञ हो गया। गया शहर से चलते हुए उसने हृदय में धारण किया कि यदि गुरु जी इतने प्रतिभावान हैं तो वे मुझे चतुर्भुज रूप में दर्शन दें। जब वह आकर उनके सम्मुख हुआ तो उन्हें चतुर्भुज रूप में देख कर चकित हो उठा और निवचेष्ट होकर धरती पर गिर पड़ा। जब उसे होश आया तो उसने गुरु जी को उनके वास्तविक रूप में देखा। वह उठ कर चरणों में गिर पड़ा। वह कहने लगा, "महाराज! मुझ पर कृपा करो, मुझे अपना सिख बना लो।"

गुरु जी ने कहा, "भक्त भगवान! तुम जिस कामना से यहां आए थे, वह तो पूर्ण हो गई। लेकिन यदि आप ने अब दीक्षा लेनी है तो बाबा श्रीचंद जी की गद्दी पर विराजमान बाबा मेहर चंद जी के पास चले जाओ। वे आप को दीक्षा देंगे। गुरु जी की इस बात को मानता हुआ भक्त भगवान बाबा मेहर चंद जी के पास चला गया। उसने बाबा जी के समक्ष माथा टेका और अपनी वार्ता सुनाई। उसने यह भी बताया कि गया में उसका बहुत बड़ा डेरा है तथा सैंकड़ों साधु उसके शिष्य हैं।

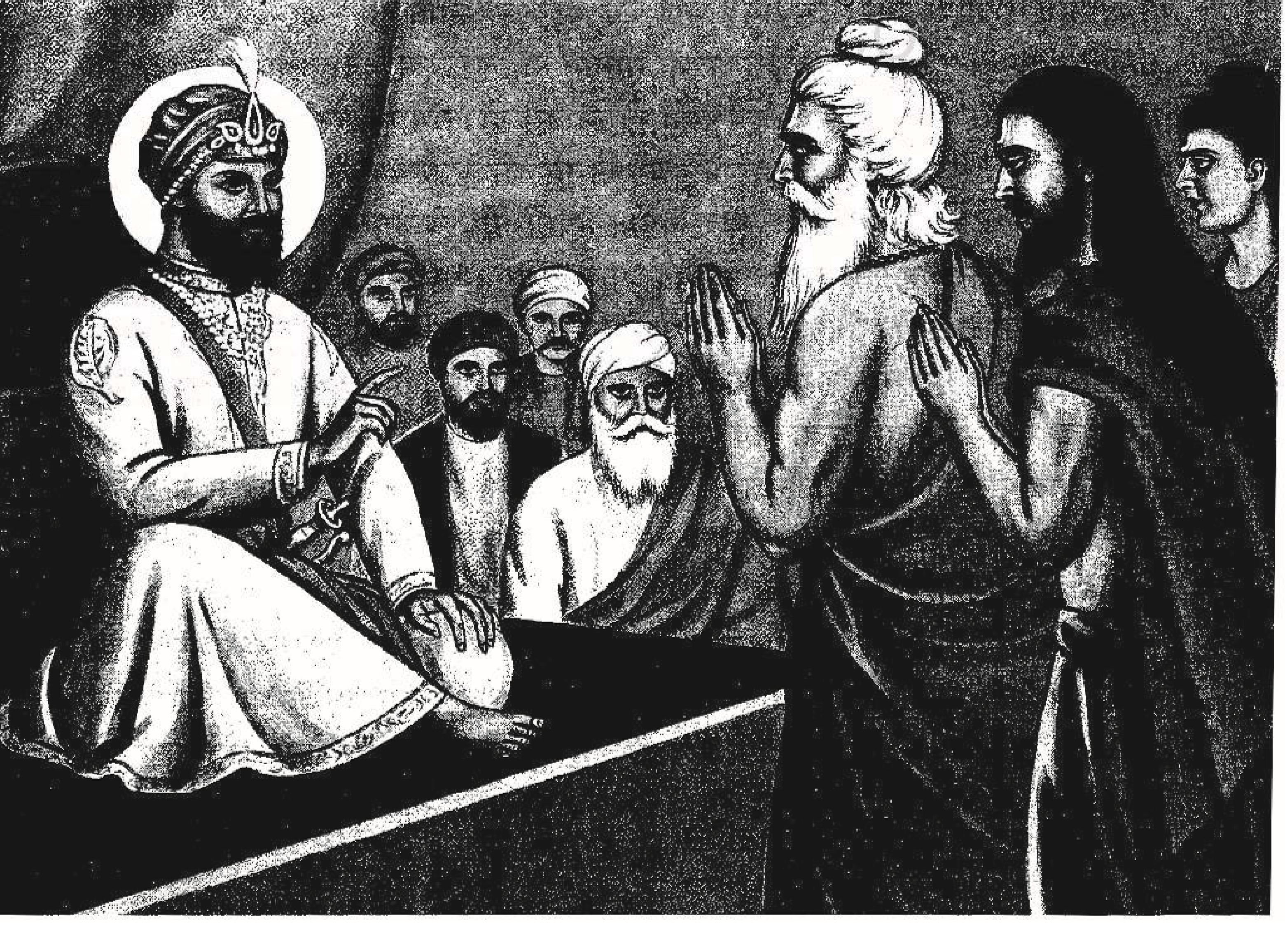
बाबा मेहर चंद उसकी यह वार्ता सुन कर हंस पड़े। वह कहने लगे, "भक्त भगवान! तुझ में से अभी अभिमान समाप्त नहीं हुआ है। एक संत मण्डली बना कर तुम घूम-फिर रहे हो। लेकिन तुम्हारा रोम-रोम लोभ, मोह व अहंकार में ग्रस्त है। यदि तुम इन कामनाओं से मुक्ति पाना चाहते हो तो तुझे गुरु हरिराय जी के पास ही जाना चाहिए। इस रोग का उपचार मेरे पास नहीं है। गुरु जी से ही नाम-दान लेकर अपना जीवन सफल करो। बाबा श्रीचंद जी भी अपनी फकीरी गुरु-घर को दे गए हैं।" बाबा मेहर चंद को मिल कर भक्त

भगवान फिर गुरु जी के पास कीरतपुर आ गया। वह अब सत्य हृदय से गुरु का सिख बनना चाहता था। उसने अपने सभी साधु जनों को कहा कि मैं तो अब गुरु का सिख बनना चाहता हूं और यह साधुओं वाला पहरावा उतार दूंगा। जो सिख बनना चाहते हैं, वह मेरे साथ आ जाएं और जो सिख नहीं बनना चाहते, वह जहां भी जाना चाहते हैं, चले जाएं।

साधुओं को यह आदेश करके वह फिर गुरु जी के चरणों में आ गया और कहने लगा, "महाराज! मुझ पर कृपा करो और मुझे नाम-दान प्रदान करो।" गुरु जी ने उसे नाम-दान प्रदान करके आनंदित कर दिया। भक्त भगवान के हृदय के द्वार खुल गए। उसकी आंतरिक 'मैं' समाप्त हो गई।

उसका गुरु-घर से इतना प्रेम हो गया कि वह हर समय गुरु जी की सेवा में उपस्थित रहने लगा। गुरु साहिब उसकी श्रद्धा से बहुत प्रसन्न हुए। एक दिन गुरु जी कहने लगे, "भाई भगवान! हम तुझ पर बहुत प्रसन्न हैं, हम चाहते हैं कि तुम हमारे प्रचारक बन कर शहर में जाओ।"

भक्त भगवान ने गुरु जी के आदेश की पालना की। उसके सभी शिष्य भी सिख बन गए थे। वह अपने शहर को चला गया और उत्तर प्रदेश व बिहार में उसने 360 धर्म-स्थल स्थापित किए। भक्त भगवान की गद्दी पटना के निकट दानापुर में है।



भाई फेरू

भाई फेरू लाहौर जिले के गांव अंबवाड़ी का वासी था। उसका प्रथम नाम संगत था। वह अल्पायु में ही फेरी लगा कर सामान बेचने लग पड़ा था। जब उसने कीरतपुर में गुरु हरिराय साहिब की शोभा सुनी तो उसने मन बनाया कि यही फेरी का काम कीरतपुर में जाकर किया जाए। कीरतपुर शहर में उन दिनों बहुत रौनक होती थी। उसने विचार किया कि वहां उसकी आमदन भी काफी ज्यादा होगी। उसे यह बात भी आकर्षित कर रही थी कि वहां नित्य प्रति गुरु जी के दर्शन भी हुआ करेंगे। इसलिए वह अपना समानादि लेकर कीरतपुर में आ गया। वहां उसने एक छोटा-सा मकान किराए पर ले लिया। यहां भी वह नित्य फेरी लगाता तथा उसे पहले से अधिक आय होने लगी।

यहीं पर भाई भगतू गुरु हरिराय जी के अनन्य श्रद्धालु थे। वह गुरु-घर के सभी कार्यों के प्रबंधक थे। उन दिनों गेहूं की कटाई चल रही थी। भाई भगतू कुछ श्रमिकों को लेकर कटाई करवा रहे थे। एक दिन जब वह श्रमिकों के लिए खाना लेकर आए तो श्रमिकों ने खाना देख कर कहा कि भाई जी! हमारी मेहनत का कुछ तो ख्याल किया करो। थोड़ा-सा घी ही साथ ले आया करो। उस समय भाई फेरू जी फेरी लगाते हुए उधर से गुजर रहे थे। श्रमिकों के ये वचन सुन कर उन्होंने अपना सामान वहीं पर रख दिया तथा घी के टिन को श्रमिकों के पास ले गए और एक-एक कुप्पी घी की उन्हें दी। सभी श्रमिक खुश हो गए। भाई भगतू ने कहा, "सेठा! जितने तुम्हारे पैसे बने हैं, गुरु जी के कोष में से ले लेना।"

तदुपरांत भाई फेरू अपने घर चला गया। अपना सामान उसने टिका कर रख दिया, लेकिन अगले दिन जब फेरी लगाने हेतु वह घर से चलने लगा और उसने घी का टिन देखा तो उसने देखा कि सभी श्रमिकों को एक-एक कुप्पी घी देने के बावजूद भी टिन में उतना ही घी पड़ा है। रत्ती भर भी वह कम नहीं हुआ था। वह यह अलौकिक क्रिया देख कर चकित हो गया। वह समझ गया कि यह सब गुरु जी की कृपा है। वह उसी समय भाई भगतू जी के पास पहुंचा और कहने लगा, "मुझे भी उस कृपालु दाता से मिलाओ। आज से मैंने फेरी लगानी बंद कर दी है और मैं अब गुरु का हो गया हूं। मैं अपना शेष जीवन अब गुरु की सेवा में ही व्यतीत करूंगा।"

भाई भगतू उसे गुरु जी के पास ले गया और कहने लगा कि यह भाई संगत अपना शेष जीवन आप जी की सेवा में व्यतीत करना चाहता है। गुरु जी ने उसकी ओर कृपा-दृष्टि डाली और कहा, "अब से हम तुम्हारा नाम ही बदल देते हैं, क्योंकि तुझे फेरी लगाते हुए प्रभु के नाम की दात मिली है, इसलिए अब से तुम्हारा नाम भाई फेरू हो गया। तुझे लंगर की

सेवा में लगाया जाता है, लेकिन यह ध्यान रखना कि कोई भूखा न जाए।

भाई फेरू दिन-रात लंगर की सेवा में मग्न रहता। एक दिन कुछ सिख कुसमय आ गए। उस समय कुछ बहे प्रशादे पड़े थे और कुछ ताज़े तैयार हो रहे थे। उसने कुछ संगत को बहे प्रशादे बांट दिए और कुछ को ताज़े बांट दिए। एक सिख ने हंसते हुए कहा कि भाई फेरू! तुम ने तो आज लंगर काना ही कर दिया। भाई फेरू ने कहा, "गुरसिख! मुझ से भूल हो गई। आगे से मेरी आंख कानी हो जाए, किन्तु मैं लंगर काना नहीं होने दूंगा।" भाई फेरू की बात सत्य हो गई। उसकी एक आंख कानी हो गई। जब गुरु हरिराय साहिब को उसकी एक आंख खराब होने के बारे में पता चला तो उन्होंने उसकी सेवा के मद्देनज़र उसे एक पोथी व मजीठा चोला दिया। गुरु साहिब ने कहा, "भाई फेरू तुम्हारी सेवा पर हम प्रसन्न हैं। तुम छोटे देश चले जाओ और सिखी का प्रचार करो। तुझे किसी भी तरह की कमी नहीं आएगी। हाथ तुम्हारा होगा और जेब मेरी होगी।"

भाई फेरू नामदान और सिखी का प्रचार करने लगा। उसने अटूट लंगर लगा दिया तथा उसे किसी किस्म की कोई कमी नहीं रही। वह जितना खर्च करता, उससे अधिक उसे प्राप्त हो जाता। उसने 'मियां की मौड़' की जूह में जाकर डेरा लगा दिया।



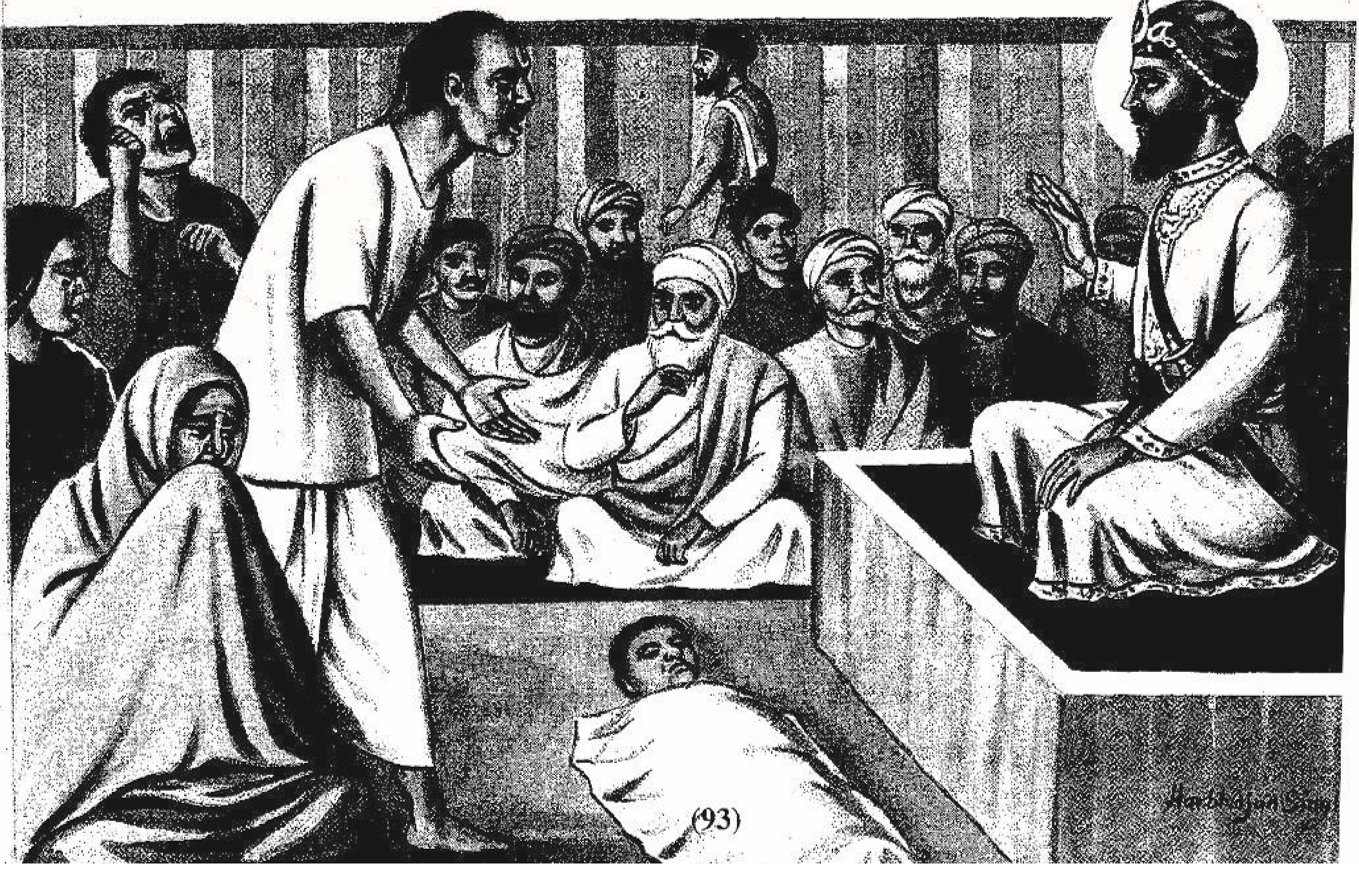
भाई जीवन

भाई भगतू गुरु अर्जुन देव व गुरु हरिगोबिंद साहिब के साथ रहा। जब हरिगोबिंद साहिब कीरतपुर आ गए तो वह यहां आ गया। कीरतपुर के निर्माण में उसका बहुत योगदान था। उसकी सेवा से प्रसन्न होकर एक दिन गुरु जी ने उसको अपने पास बुलाया और कहा, "भाई भगतू! हम तुम्हारी सेवा पर बहुत प्रसन्न हैं। हम तुझे अपना मसंद नियुक्त करते हैं, तुम अपने क्षेत्र में जाकर सिखी का प्रचार करो और लंगर चलाओ। गुरु जी की आज्ञा पाकर भाई भगतू अपने गांव आ गया और सिखी का प्रचार करने लगा। उन्हीं दिनों उसकी पत्नी का देहांत हो गया। एक दिन जब वह गुरु जी को मिलने आया तो गुरु जी ने कहा, "भाई भगतू! तुम विवाह क्यों नहीं करवा लेते? इस आयु में तुम्हारी सेवा कौन करेगा?" गुरु जी की आज्ञा मान कर भाई भगतू ने विवाह करवा लिया। लेकिन थोड़े समय के पश्चात् ही जब एक दिन वह करतारपुर गुरु जी के दर्शन करने आया तो वह स्वर्ग सिधार गया। गुरु जी ने करतारपुर में ही उसका अपने हाथों अंतिम संस्कार किया।

भाई भगतू का ज्येष्ठ पुत्र भाई गोरा बहुत शूरवीर था। वह सदैव अपने साथ पांच सौ शस्त्रबद्ध नवयुवक रखता था और गुरु जी के आस-पास ही रहता था, ताकि गुरु जी की रक्षा की जाए। गोरा व जीवन अपनी सौतेली मां को अपनी सगी मां की भांति स्नेह करते थे। एक दिन गुरु हरिराय साहिब के चौबदार भाई जस्सा ने उनकी सौतेली मां के साथ विवाह करने की बात की। जब भाई गोरा ने यह सुना तो उसने क्रोध में आकर भाई जस्सा को कत्ल कर दिया। गुरु जी ने इस बात को पसंद न किया और सोचा कि भाई गोरे को इसकी सज़ा मिलनी चाहिए। भाई गोरा अपने इस कुकृत्य पर बहुत पछताया। वह किसी भी तरह गुरु साहिब से क्षमा याचना करना चाहता था। गुरु साहिब जहां भी जाते थे, वह उनके पीछे-पीछे ही रहता था। गुरु जी के घोड़ों को घास डालता था। उन्हीं दिनों एक ऐसी घटना घटित हुई कि गुरु जी ने गोरे को क्षमा कर दिया। गुरु जी अपनी सेना सहित दोआबा के क्षेत्र में गए हुए थे। गुरु जी की पत्नी व साहिबज़ादे पीछे अकेले थे। सेना न देख कर मुखलिस खां के पोत्रे कासम खां ने कैम्प पर आक्रमण कर दिया। भाई गोरा व उसके साथी तुरंत सुचेत हो गए और उन्होंने शत्रु सेना का डट कर सामना किया। शत्रुओं को पराजय का मुंह देखना पड़ा। माता सुलखणी ने इस युद्ध का सम्पूर्ण दृश्य अपनी आंखों से देखा था। उन्होंने गुरु साहिब को वापिस आने पर सारी व्यथा सुनाई। गुरु साहिब भाई गोरा की वीरता पर बहुत खुश हुए और उन्होंने उसे पूर्णतया क्षमा कर दिया।

भाई भगतू के दूसरे पुत्र भाई जीवन ने इससे भी अधिक कुर्बानी दी। एक बार जब गुरु

साहिब करतारपुर आए हुए थे तो एक ब्राह्मण के युवा पुत्र की मृत्यु हो गई। वह बहुत विलाप करने लगा। कुछ ब्राह्मणों ने उसे कहा कि करतारपुर के बाहर गुरु हरिराय साहिब आए हैं। कहते हैं कि उनमें महान शक्ति है, इसलिए आप अपने बच्चे को उनके पास लेकर जाओ। यदि उनमें कोई शक्ति होगी तो वह इस बालक को जीवित कर देंगे, अन्यथा उनके बारे में भी पता चल जाएगा कि वह केवल पाखण्ड ही करते हैं। ब्राह्मण गुरु-घर को बदनाम करने हेतु कुछ-न-कुछ करते ही रहते थे। उन ब्राह्मणों के विमर्श को मान कर वह अपने बालक को गुरु जी के पास ले गया और वहां जाकर बालक की मृत्यु पर विलाप करने लगा। उसका विलाप देख कर संगत का हृदय भी द्रवित हो गया। कई कहने लगे, गुरु जी को यह बालक जीवित करना चाहिए। गुरु जी को जब इस बात का पता चला तो उन्होंने कहा कि दूसरे का भला केवल कामना करने से ही नहीं हो जाता, इसके लिए कुर्बानी देनी पड़ती है। जो सिख इस ब्राह्मण के बालक को जीवित न करने में गुरु-घर का अपमान समझता है, तो वह जान के बदले में जान दे दे। गुरु साहिब की इस बात को सुन कर भाई जीवन दीवान में से उठ कर चला गया और बाहर एकांत में अरदास करके अपने प्राण त्याग गया। ब्राह्मण का पुत्र जीवित हो गया। गुरु जी ने भाई जीवन की इस कुर्बानी की बहुत प्रशंसा की।



औरंगज़ेब के आक्रमण

गुरु हरिगोबिंद साहिब ने जब गुरु हरिराय साहिब को गुरुगद्दी प्रदान की थी तो उन्होंने आदेश किया था कि 2200 शस्त्रबद्ध जवानों को अपने साथ रखना है और निर्भयता से रहना है। उन्होंने यह वर दिया था कि जो भी आप पर आक्रमण करने आएगा, वह मार्ग में ही मारा जाएगा। गुरु हरिगोबिंद साहिब का यह वरदान सत्य प्रमाणित हुआ। औरंगज़ेब ने गुरु जी पर तीन आक्रमण किए, लेकिन तीनों में ही वह असफल रहा।

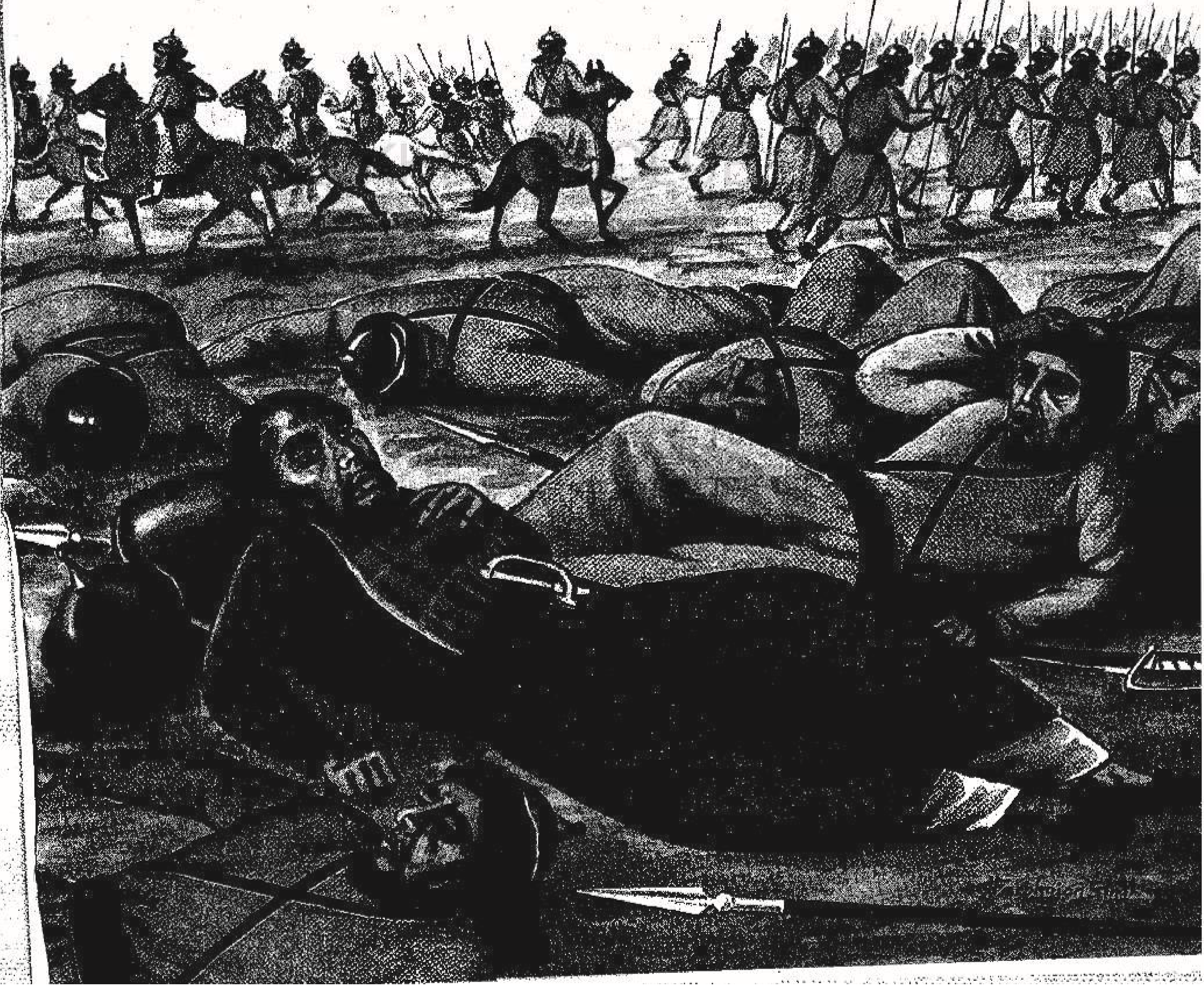
दारा शिकोह का गुरु जी से बहुत स्नेह था। गुरु जी ने उसे औषधि देकर उसकी जान बचाई थीं। शाहजहां के बीमार होने के पश्चात् राज सिंहासन प्राप्त करने हेतु जो युद्ध हुआ, उस में दारा शिकोह अपनी जान बचाता हुआ पंजाब की ओर भागा। उसने गुरु हरिराय साहिब को एक पत्र भी लिखा। वह पहले कीरतपुर गया। कीरतपुर से उसे पता चला कि गुरु जी गोइंदवाल गए हुए हैं। कीरतपुर से दारा शिकोह गोइंदवाल पहुंचा। उसकी बुरी अवस्था देख कर गुरु जी ने उसे दिलासा दिया। दारा शिकोह ने गुरु जी को यह विनती की कि आप औरंगज़ेब की सेना को ब्यास तट पर ही रोक कर रखें ताकि वह लाहौर पहुंच सके। गुरु जी ने अपनी सेना को दो प्रहर घाट पर पहरा देने का आदेश दिया। इस तरह गुरु जी ने दारा शिकोह की सहायता की थी। जिसने भी दारा शिकोह की सहायता की थी, उसे ही औरंगज़ेब ने मरवा दिया था। इसलिए औरंगज़ेब गुरु जी को भी किसी तरह से मरवाना चाहता था।

प्रथम आक्रमण में उसने जालिम खां को दस हज़ार सैनिकों के साथ कीरतपुर पर आक्रमण करने के लिए भेजा। लेकिन जालिम खां ने मार्ग में ही किसी जानवर का कच्चा मांस खा लिया था और वह उदर पीड़ा के कारण वहीं पर मर गया।

यह आक्रमण असफल रह जाने के कारण औरंगज़ेब ने कंधार के एक जरनैल दूंदे खां को एक विशाल सेना देकर भेजा। जब वह करतारपुर पहुंचा तो उसके एक शत्रु ने उसे सोए हुए को मार दिया। उसे मृत देख कर सेना में इतनी घबराहट उत्पन्न हो गई कि समस्त सेना वहां से लौट गई।

तीसरी बार उसने सहारनपुर के नाहर खां को भेजा। उसे अच्छी तरह समझाया गया कि वह कीरतपुर को पूरी तरह तबाह कर दे और गुरु जी को पकड़ कर यहां ले आए। नाहर खां व उसकी सेना जब यमुनानगर पहुंची तो उसकी सेना में हैज़ा फैल गया। जिससे नाहर खां व आधी से अधिक सेना मर गई। जो बचे थे जब उन्हें पता चला कि यह सब गुरु जी के कोप के कारण हुआ है तो वह वहां से पीछे हट गए। इसके पश्चात् किसी भी जरनैल ने गुरु जी पर आक्रमण करने की चेष्टा नहीं की।

बेशक गुरु जी को यह वर था कि कोई भी शत्रु उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकता, लेकिन फिर भी वह अत्याचारी औरंगज़ेब के माथे नहीं लगना चाहते थे। गुरु हरिराय साहिब गुरु नानक की ज्योति थे, इसलिए वह किसी से डरते नहीं थे। लेकिन संत महापुरुष कभी भी ऐसे बादशाह को मिलना पसंद नहीं करते थे, जिसने केवल लोगों को भयभीत करने का मार्ग अपनाया हो। जो स्वयं दीनदार न हो, लेकिन दूसरों को अपने मज़हब में लाने हेतु कष्ट देता हो। जिसने राजसत्ता प्राप्त करने के लिए अपने पिता को बंदी बनाया हो और अपने सगे भाई भतीजों को कत्ल कर दिया हो। जो संतों, सूफियों व महापुरुषों को दुखी करने व कत्ल करने में ही प्रसन्नता अनुभव करता हो। उसने ब्रह्म ज्ञानी शर्मद को भरे दरबार में कत्ल करवा दिया था। इसलिए गुरु हरिकृष्ण साहिब को गुरुगद्दी सौंपने के पश्चात् उन्होंने यह निश्चय किया कि वह औरंगज़ेब के माथे न लगें, चाहे इसके लिए उन्हें जीवन कुर्बान क्यों न करना पड़े।



ज्योति ज्योत समाना

जब उन्हें अपने अंतर्मुखी ज्ञान द्वारा अनुभव हुआ कि उनका अब प्रभु में विलीन होने का समय निकट आ गया है तो उन्होंने अपने चयनित सिखों को हुक्मनामे भेज कर बुला लिया। एक दिन दरबार लगा हुआ था और समस्त संगत 'आसा की वार' का कीर्तन श्रवण कर रही थी। कीर्तन की समाप्ति के उपरांत आप जी ने संगत को सम्बोधित किया कि गुरु केवल एक ज्योति है। यह शरीर स्थाई नहीं है। जिस प्रकार बादल वर्षा करके फिर उड़ जाते हैं, उसी प्रकार गुरु जी एक बादल की भांति ही हैं। वह लोगों के तपते हृदयों को शीतल करके, कुमार्गगामी को सही मार्ग बता कर फिर प्रभु की ज्योति में विलीन हो जाते हैं। हमारा अब देह-त्याग का समय निकट आ रहा है। गुरु की ज्योति अब श्री हरिकृष्ण में प्रविष्ट कर जाएगी। वही अब आपका मार्गदर्शन करेंगे। लोक-परलोक के यही अब स्वामी होंगे। जो भी श्रद्धा युक्त होकर इनसे बंध जाएगा, वह फलीभूत होगा। इनको बालक नहीं समझना, उनमें सम्पूर्ण गुरु के गुण हैं। ये आपकी सभी मनोकामनाएं पूर्ण करेंगे।

यह कह कर गुरु जी अपनी गद्दी से उठे और श्री हरिकृष्ण जी को स्वयं उठा कर गुरुगद्दी पर बिठा आए। उन्होंने चंवर झुलाने वाले को कहा कि वह अब श्री हरिकृष्ण जी को चंवर झुलाए। फिर उन्होंने गुरु हरिकृष्ण जी के इर्द-गिर्द तीन बार परिक्रमा की। तदुपरांत बाबा बुड्ढा जी के पड़पोत्रे बाबा गुरदित्ता जी ने उनके माथे पर कलगी सजाई और कृपाण भेंट की। बाबा गुरदित्ता जी फिर गुरु हरिकृष्ण जी के चरणों में नतमस्तक हुए। इसके पश्चात् सम्पूर्ण संगत ने गुरु जी के चरणों में वंदन किया।

गुरु हरिकृष्ण साहिब को गुरुगद्दी प्रदान करके गुरु हरिराय जी अपना सम्पूर्ण समय प्रभु-भक्ति में ही व्यतीत करने लगे। श्री हरिकृष्ण जी को गुरुगद्दी देने और गुरु हरिराय साहिब के शीघ्र ही ज्योति ज्योत समा जाने के समाचार सुन कर सिख संगत जोर-शोर से वहां आने लगी।

गुरु जी एक दिन दरबार में बैठे कीर्तन सुन रहे थे। जब कीर्तन की समाप्ति हुई तो बैठे-बैठे संगत को कहने लगे, "मैं समस्त संगत पर बहुत प्रसन्न हूं। अब मेरा प्रभु की ज्योति में विलीन होने का समय आ गया है। आप गुरु-गुरु जपना। भजन-कीर्तन करना।" यह कह कर गुरु हरिराय जी 6 अक्तूबर 1661 को ज्योति-ज्योत समा गए। पातालपुरी में ही आप का अन्तिम संस्कार किया गया। जब चौथे दिन अस्थियां एकत्र करने गए तो सब हैरान हो गए कि वहां अस्थियां हैं ही नहीं। गुरु जी का कथन सत्य हुआ कि गुरु शरीर नहीं, बल्कि ज्योति है।